विदेशयात्रा ।

मूल-लेखक,

स्वर्गीय पण्डित विशननरायन दर,

बैरिस्टर एट् ला ।

अनुवादक,

श्रीयुत मुकुटबिहारीलाल भार्गव, बी.ए.,

सुपरिंटेंडेंट, अवधअख़बार.

LUCKNOW:

Printed by M. L. Bhargava, B. A., at the N. K. Press.

1917.

1st Edition] [Price, As. 6.

विदेशयात्रा।

मूल-लेखक.

स्वर्गीय पण्डित बिशननरायन दर, बैरिस्टर एट् ला।

अनुवादक,

श्रीयुत मुकुटबिहारीलाल भार्गव, बी. ए.,

सुपरिंटेंडेंट, अवधअख़बार.

प्रकाशक

नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।

१६१७

प्रथमबार] [क़ीमत ।=)

भूमिका।

इस छोटी सी पुस्तक का मूलविषय उस समय का लेख है जब हिन्दुओं में जहाज यात्रा अथवा यों कहिये कि भारत-सीमा से बाहर पग धरना दूषित ही नहीं बरन एक धार्मिक पाप विचार किया जाता था। अतः जब मध्यशिक्षा में पण्डित विष्णुनारायण दर को यह उत्साह हुआ कि विलायत जाकर पश्चिमीय शिक्षा प्राप्त करें तो आपके माता पिता और कुटुम्ब के मुखियाओं में विशेषतः और कश्मीरी जाति में एक बड़ी खलबली मच गई थी। और जिस समय तीन वर्ष रहने के पश्चात् आप इंग्लिस्तान से लौट आये हैं तो जाति की एक बड़ी संख्या ने आपको जाति में सम्मिलित करना अस्वीकार किया जिसका परिणाम यह हुआ कि कश्मीरी पण्डित दो पक्षों में विभक्त हो गये। जिस पक्ष ने आपको जातिच्युत करना चाहा था उसका नाम धर्मसभा और जो वर्ग आपका सहायक था उसका नाम विष्णुसभा हुआ। इस बीच में भारतवर्ष शीघ्रता से उन्नति करता रहा है। इस तीस वर्ष के समय में इतना अन्तर होगया है कि अब हिन्दू लोग साधारणतः विलायत तथा अन्य देशों को जाते और वहां निवास करते हैं और लौट आने पर कुछ विरोध नहीं होता। यद्यपि उन

कुछ जातियों में जिन में शिक्षा का प्रचार बहुत कम है अब भी यह सिद्धान्त विरोध की दृष्टि से देखा जाता है । परन्तु सौभाग्य से ऐसी जातियों की संख्या बहुत ही थोड़ी है ।

जिस महाशय की प्रबल लेखनी का फल यह लेख है वह संयुक्त देश आगरा व अवध की शिक्षित श्रेणी में सब से प्रतिष्ठित और माननीय हैं ।

आपका जीवन एक ऐसे संतोषी-पुरुष का जीवन है जिस ने विद्या को धन और देश व जाति की सेवा को मोक्ष का द्वार समझा। और स्वतन्त्र विचार और दूरदर्शिता को मानुषी सज्जनता का लक्ष्य माना ।

आपने बाराबंकी प्रान्त में सन् १८६४ ई० में जन्म लिया आपका सम्बन्धे अवध से तीन पीढ़ियों से है । आप के दादा पण्डित हरीराम दर कश्मीर से आये थे और अवध के राज्य की ओर से कलकत्ता में राजसी संवाद-दाता के पद पर नियुक्त हुए थे कलकत्ता हाईकोर्ट के प्रथम भारतीय जज पण्डित विशम्भरनाथ आपके चचा थे । कश्मीरी पण्डित " दर " वंशमात्र में साहित्य और विद्या का व्यसन साधारणतः रहा है जैसा कि पण्डित रतनाथ सर्शार भी इसी वंश में से थे जिन्होंने फिसानाआज़ाद व सैरकोहसार इत्यादि उपन्यास लिखकर उर्दू भाषा की शोभा को बढ़ाया और उपन्यास लेखन निपुणता में एक नवीन जीवन संचार कर दिया

उस समय की रीति के अनुसार पण्डित विष्णुनारायण ने अपनी आरम्भिक शिक्षा उर्दू फ़ारसी आठ नौ वर्ष की आयु में घर ही पर आरम्भ की । इसके पश्चात् आपने चर्च-मिशन हाई स्कूल से एंटरेन्स पास किया अंग्रेजी भाषा से आपको कुछ ऐसा प्रेम था कि एंटरेन्स तक पहुँचने से प्रथम ही निश्चित शिक्षा के अतिरिक्त अंग्रेज़ी की बहुत सी प्रसिद्ध पुस्तकें विशेष कर स्माइल्स की निर्मित सेल्फ हेल्प और करेक्टर को भली भांति अवलोकन किया और इन्हीं पुस्तकों को आपके विद्यानैपुण्य अति उच्च मंदिर की आधार शिला मानना चाहिये । एंटरेन्स पास करने के पश्चात् आप कैनिङ्ग कालिज के एफ़. ए. क्लास में भर्ती हुये । भारत वर्ष की वर्तमान समय की निश्चित शिक्षा में बहुत सी कठिनाइयां ऐसी हैं जिनको कभी २ तीव्र से तीव्र बुद्धिवाले विद्यार्थी भी पार नहीं कर सकते ।

कोई मास्तिष्क ऐसे होते हैं कि साहित्य, दर्शनशास्त्र, इतिहास, अर्थनीति कठिन से कठिन विषयों में ऐसा अभ्यास कर लेते हैं कि उनकी समता का कदाचित् ही कोई मिल सके । परन्तु कुछ ऐसे विषय हैं जिनमें बुद्धि की तीव्रता के होते हुये भी परिश्रमी से परिश्रमी विद्यार्थी भी यथार्थ योग्यता प्राप्त नहीं कर सकते जैसा कि गणितविद्या एक ऐसा विषय है जिसके कारण बहुतेरी नौका विद्यासागर के मझधार ही में डूब जाती हैं ।

आपने एफ़. ए. की परीक्षा दो बार दी परन्तु दोनों बार आप गणितविद्या में उत्तीर्ण न हुये जब इस प्रकार यहां उच्च शिक्षा का द्वार आपके लिये बंद होगया तो आपने विलायत जाकर विद्या प्राप्त करने का विचार किया । परन्तु यह वह समयथा जब विलायत के नाम से प्राण निकल जाते थे और विलायत की यात्रा नरक की यात्रा से कम भयानक न समझी जाती थी अतएव माता पिता से आज्ञा मिलना असम्भव था परन्तु बहुत ही हठ करने पर आपकी माता ने आपको आज्ञा दे दी और सिवाय थोड़े से इष्ट मित्रों के और किसीको इस भेद की सूचना न दी । और एक दिन इलाहाबाद की यात्रा का बहाना करके बम्बई को चल दिये और वहां से विलायत की राह ली । वहां पहुँच कर आप मिडिल टेम्पुल में बैरिस्टरी के लिये भरती होगये—परन्तु आपको न्याय (क़ानून) से कुछ विशेष प्रेम न था किन्तु उसको केवल जीविका का एक मार्ग समझते थे । आपने अपना समय अधिकतर इतिहास, दर्शनशास्त्र, राजनैतिक सिद्धान्त परस्पर सम्मेल सम्बन्धी पुस्तकों के अवलोकन करने में व्यतीत किया और अंग्रेज़ों के रहन-सहन उनकी रीति उनकी कुलरीति उनका स्वभाव उनकी सोशल और पोलीटिकल रीतियों को अतिध्यान से अवलोकन भी करते रहे इसका प्रमाण इस लेख में स्पष्ट मिलता है । ठहरने के समय में आपने बहुधा समाचारपत्रों

और छोटी पुस्तकों में लेख लिखे जो वहां असाधारण दृष्टि से देखे गये । विलायत-निवास के पहिले वर्ष में पण्डित साहब को राजनैतिक कार्यों में अधिक रुचि उत्पन्न न हुई । परन्तु जब सन् १८८४ ईस्वी के अन्त में मिस्टर ग्लैडस्टन ने होमरूल बिल भेज करके अंग्रेज़ों के राजनैतिक विचारों की नदी में तरङ्ग उत्पन्न कर दिया तो उससे आप पर बड़ा प्रभाव पड़ा । और भारतवर्ष के राजनैतिक अधिकारों की रक्षा के वेग आपके हृदय में उत्पन्न हुये । सुअवसर से उसी समय में स्वर्गीय मिस्टर लालमोहन घोश और मिस्टर चन्द्र-वार्कर भी विलायत पधारे और प्रथम महाशय ने पार्लिया-मेन्ट में प्रवेश करने की चेष्टा की इन सर्व घटनाओं का समुदायी प्रभाव यह हुआ कि आपने भी भारत के राजनैतिक सिद्धान्तों का अवलोकन आरम्भ किया और देश-सेवा का बीड़ा उठाया । विलायत से बैरिस्टरी की परिक्षा पास करके लौट आने के पश्चात् आपने बैरिस्टरी तो आरम्भ करदी परन्तु क़ानून (न्याय) की अपेक्षा राजनैतिक और जातिसम्बन्धी कार्यों में आपकी रुचि कहीं अधिकतर रही ।

आप भारतीय नैशनल काङ्गरस के तीसरे उत्सव में मद्रास में प्रथम बार सम्मिलित हुये और इस अवसर पर आपने जो एक सूक्ष्म व्याख्यान दिया उससे काङ्गरस के अधिष्ठाता मिस्टर ए. ओ. होम पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने उक्त

वार्ता के एक निर्वाचन से काङ्गरस के विषय-शीर्षक की शोभा को बढ़ाया । इस व्याख्यान से लोगों को अनुमान हो गया था कि एक दिन आपकी देश के अधिष्ठाता पुरुषों में गणना होगी ।

आपके राजनैतिक उद्योग का क्रम चल रहा था कि सन् १८९३ ई० में आज़मगढ़ के हिन्दू मुसलमानों में गौहत्या के कारण बड़ा झगड़ा हो गया । और कुछ कारणों से कुछ ऐसी दुर्घटना हुई कि हिन्दुओं पर राज्य कर्मचारी कुपित हुये और अनेक हिन्दू रईसों और ज़मीन्दारों की मर्यादा जाते रहने का भय हुआ ।

इस अशान्ति के समय में किसी वकील या बैरिस्टर का साहस न पड़ा कि निर्पराधी अभियुक्तों को अभियोग से छुड़ाने की चेष्टा करे । उस समय पण्डित विष्णुनारायण स्वयं आज़मगढ़ पधारे । और वहां सर्व घटनाओं की परीक्षा करके एक छोटी सी उत्तम पुस्तक निर्मित की जिसमें सर्कार के प्रबन्धी दोष भली भांति दिखलाये गये । यह पोलीटिकल बात इस प्रान्त के इतिहास में स्मारक है उस समय में बंगदेश के समाचार पत्रों ने लिखा था कि पण्डित विष्णुनारायणदर ने वह कार्य किया है जिसके हेतु यदि उनकी सोने की मूर्ति स्थापित की जाय तो उत्तम है ।

इस छोटी सी पुस्तक के अतिरिक्त पण्डित विष्णुनारायण

ने लम्बे लेख राजनैतिक और जातीय सिद्धान्तों पर नाना प्रकार के समाचार पत्रों में लिखे हैं जिनके पढ़ने से स्पष्ट प्रकट होता है कि आपने पश्चिमीय देशों के इतिहास और दर्शनशास्त्र को कैसे पार किया है । और पश्चिमीय नियमों के प्रकाश में आप कैसे सहज से भारतवर्ष की राजनैतिक और जातीय गांठें सुरझाने का प्रयत्न करते हैं ।

आपके लेख सदा स्वतन्त्र विचाररूपी रत्नों से भरे रहते हैं स्वर्गीय बाबू गङ्गाप्रसाद साहब कहते थे कि मिस्टर डिवी ने उनसे एक बार कहा कि इस समय भारतवर्ष में दो मनुष्य उत्तम अंग्रेज़ी लिख सकते हैं एक पण्डित विष्णु-नारायण दूसरे स्वर्गीय मिस्टर एन. एन. घोश ।

माननीय डाक्टर तेजबहादुर सप्रू का कथन है कि जब वह आगरा कालिज में पढ़ते थे तो एक दिन मिस्टर एंडरज़ आपके प्रोफ़ेसर जो अंग्रेज़ी भाषा के स्वयं एक धुरन्धर विद्वान् थे कहने लगे कि यदि इस प्रान्त में कोई मनुष्य ऐसी अंग्रेज़ी लिखता है कि जिसके लेखपर मातृ-भाषावालों को अंग्रेज़ के लेख की आशंका होती है तो वह पण्डित विष्णुनारायणदर हैं डाक्टर महोदय यह भी कहते थे कि आगरा कालिज के प्रधान मिस्टर टाम्सन ने एक दिन प्रसङ्गवश कहा कि जो लेख विष्णु-नारायण दर ने समय के प्रभाव के शीर्षक से लिखे हैं यदि मैं ऐसे लेख लिखता तो विलायत के किसी प्रसिद्ध समाचार

पत्र में प्रकाशित करता और उनके प्रकाशित होने से मेरा नाम हो गया होता ।

सन् १९०८ ई० में बरेली में इन प्रान्तों की राजनैतिक कानफ्रेन्स के आप प्रधान थे और जो व्याख्यान आपने इस अवसर पर दिया था वह इतना बहुमूल्य था कि उसकी बड़ाई से भारतवर्ष भर गूंज उठा था इसके पश्चात् सन् १९११ई० में अपने भारत जातीय कानफ्रेन्स कलकत्ता के प्रधान पद को ग्रहण किया । इस अवसर पर आपका प्रधान पद स्वीकृत लेख ऐसा प्रबल और हितैषी था । यदि बीस बार भी पढ़ा जाता तो भी मन न भरता । आप सन् १९१४ई० में माननीय राय श्रीराम बहादुर की मृत्यु पर इम्पीरियल कौंसिल के लिये इस प्रान्त के अ-सरकारी (सभासदों) मेम्बरों की ओर से विना विरुद्ध निर्वाचित हुये । परन्तु देश के दुर्भाग्य से रोग के कारण आपका काम प्रकट न हुआ बरन कदाचित् ही किसी उत्सव में आप सम्मिलित हुये हों ।

विद्यार्थियोंकी भलाईमें आपको विशेष अनुरागहै अतः कैनिङ्ग कालिज के पपुलरलेक्चरों में आपका व्याख्यान जिसका शीर्षक विद्यार्थियों और जातीय प्रेरणा था विशेष चाव से पढ़ा जाता है । मेडिकल कालिज के विद्यार्थियों और मिस्टर एडगर एंजीनियर के झगड़े में आपने सदा विद्यार्थियों को ऐसा उपदेश दिया कि उनके और एंजीनियर महाशय के बीच कुछ अन्तर न पड़े ।

पण्डित बिशननरायन दर का विद्यानैपुण्य केवल अंग्रेज़ी सभ्यता और अंग्रेज़ी भाषा तक ही नहीं । उर्दू और फ़ार्सी कवियों की कविता भी आप बड़े चाव से पढ़ा करते हैं और आपका विचार यह है कि जात्युन्नति और देशोन्नति के लिये यह परमावश्यक है कि अपनी जन्मभूमि की पुरानी भाषाओं की अर्थात् उर्दू हिन्दी इत्यादि की उन्नति कीजावे । अतः आप स्वयं उर्दू के कवि हैं उर्दू की पहिली गज़ल का एक शेर जिसको आपने निर्मित किया था यह है ।

हबीबे मुल्क है अपने वतनसे हमको उल्फ़त है
तमन्नाये वलायत क्या करें हिन्दोस्तां होकर ।

आप साधारणतः हर प्रकार की गज़ल कह सकते हैं परन्तु आपकी कविता में अधिकतर देशभक्ति की गन्ध आती है लैला मजनू जुलफ़, काकुल, गुल व बुलबुल, समरकन्द, व बुखारा की रीतियां आपको अधिकतर नहीं रुचतीं । आपकी कविता में अधिकतर भारतीय प्रकृति, भारतवर्ष के अन्य सिद्धान्तों का वर्णन होता है ।

शोक का विषय है कि आपका शरीर अधिक दिनों से रोगी रहता है आपको यक्ष्मा रोग है और इसी कारण अधिक समय एकान्तवास में अलमोड़ा में व्यतीत होता है परन्तु यहां भी देश सम्बन्धी कार्यों में आपकी रुचि अधिक रहती है ।

कठिन विषयों में आप वहीं से अपनी सम्मति लिखकर भेजते हैं। सन् १९१६ ई० में भारतीय नैशनल कौंग्रेस के जो उत्सव लखनऊ में होनेवाले हैं उसकी स्वागतीय कमेटी के आप प्रधान निर्वाचित हुये हैं। आशा कीजाती है कि आप का शरीर इस योग्य रहे कि आप इस पदसम्बन्धी कार्यों को भलीभांति पूर्ण कर सकें।

विदेशयात्रा।

विवेकी और बुद्धिमान् भारतवासियों के विचार में भारत-वर्ष से बाहर यात्रा करने का विचार थोड़े समय से विशेष होगया है विशेषतः इस कारण से कि भारतीय जीवन के कुछ परमावश्यक और गम्भीर सिद्धान्तों पर इसका बहुतही प्रबल प्रभाव पड़ता है यह सिद्धान्त कई विभागों में विभक्त हुआ है और हर भाग इस योग्य है कि उस पर अत्यन्त सोच विचार किया जावे। विदेशयात्रा की प्रेरणा अर्थात् भारतवालों का अन्य देशों में जाकर अपरिचित मनुष्यों से मिलना जिनके रहन-सहन से हम अज्ञात हैं हमारी जातीय-शिक्षा के परम सिद्धान्त से अत्यन्त निकटतर सम्बन्ध रखता है। यह तो उसका बुद्ध्यात्मक और आचारसम्बन्धी भाग हुआ अब राजनैतिक भाग लीजिये इस प्रकार की यात्रा हमारे विचारों को शासकों के कर्तव्य व प्रजा के स्वत्व सम्बन्ध में अवश्य बदल देगी क्योंकि उसके द्वारा हमारे सामने वास्तविक और जीती जागती समाजों के वे उदाहरण आयेंगे जिन्होंने अपने राजनैतिक नियमों व शासन की रीतियों को ऐसे रूप में संगठित करके उच्च अवस्था पर पहुँचाया है जो उन राजनैतिक नीवों से सर्वथा भिन्न है जो एशिया के इतिहास में हमें मिलती हैं इसके

अतिरिक्त व्यापारीय विचार से समय के हेर-फेर से यह यात्रा हम लोगों में संसार की अभिज्ञता बढ़ायेगी और उन्नति के नवीन उपायों और द्वारों को उत्पन्न करेगी जिनसे हमारी वृद्धि होगी अर्थात् जिनके कारण हमारी शिल्पविद्या के प्रचार में नवीन जीवन का संचार होजायगा। इस हेतु यदि रहन-सहन वुद्ध्यात्मक, आचारसम्बन्धी शक्तियों, राजनीति और शिल्पविद्या के समुदायी परिणाम का नाम है तो फिर यह समझना चाहिये कि विदेशयात्रा का सिद्धान्त हमारी जातीय उन्नति के परम सिद्धान्त से बहुत कुछ सम्बन्ध रखता है। निम्न पृष्ठों में मैं इस सिद्धान्त पर उसी भाव से वादानुवाद करूंगा जिसकी चर्चा अभी हो चुकी है। अर्थात् इस बात पर विचार किया जायगा कि बहिर्वर्ती देशों में भारतवासियों के यात्रा और निवास करने की प्रेरणा क्योंकर उत्पन्न हुई उसके समीप और दूर अच्छे बुरे क्या क्या परिणाम हैं इसके हर भिन्नरूप के अनुपाती अर्थ क्या हैं। हमारे वर्तमान जातीय जीवन पर किस प्रकार उसका प्रभाव पड़ता है और इसकी ओर शिक्षित हिन्दुओं को किस प्रकार ध्यानावर्तित होना चाहिये। मैं जान बूझकर शब्द "शिक्षित हिन्दू" प्रयोग में लाता हूं इसलिये कि शिक्षित मुसल्मान चाहे और किसी कारण से समुद्र की यात्रा ग्रहण न करें परन्तु जातीयबन्धन उनके लिये कोई मग रोकने

वाले नहीं हैं परन्तु प्रत्येक हिन्दू चाहे वह सनातनी-विचार का हो चाहे नवीन प्रकाश का विदेशयात्रा में जातीय बन्धन की सब से अधिक रोक पाता है ।

एक अर्थ से विदेशयात्रा हमारे लिये कोई नई बात नहीं है इसलिये कि पुराने भारत का अन्य देशों के साथ व्यापारी-सम्बन्ध था । सातवीं शताब्दी मसीह के जन्म से पूर्व भारतवासी बाबुल के साथ व्यापार किया करते थे । दसवीं शताब्दी मसीह के जन्म से पूर्व हज़रत सुलेमान के सिंहासन का हाथी दाँत उनके रत्न और मयूर और उनकी मस्जिद के चन्दन के खम्भे भारतवर्ष ही से वास्तव में प्राप्त किये गये थे । दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतवर्ष की उपजाऊ और यहां की बनी हुई वस्तुयें बुग़-दाद के न्यायाधीश की सभा और महलों में दृष्टिगोचर हुआ करती थीं । दो चार हाथी जिन पर मयूरी रङ्ग की रेशमी झूल पड़ी रहती थी महल के फाटक पर खड़े रहते थे और सिंध के आठ निवासी हर हाथी की पीठ पर बैठे रहा करते थे । इतिहास वर्तानियां निर्मित हंटर जिल्द प्रथम "मुसल्मानों के समय में विदेशयात्रा की एक नबीन दशा हो गई । हिन्दू कदाचित् ही अफ़ग़ानिस्तान से आगे बढ़ा करते थे परन्तु मुसल्मान नवीन बसनेवालों ने अपना सम्बन्ध फ़ारस, मध्य एशिया और अरबकी जन्मभूमि से बराबर

बनाये रक्खा । इस समय में अराजकता साधारणतः थी और पहुँचने पहुँचाने की सुविधा से कोई अभिज्ञ न था। यहां तक कि स्वयं भारतवर्ष का एक प्रान्त दूसरे प्रान्त के लिये विदेश समझा जाता था"।

और उस समय लखनऊ से देहली की यात्रा करना इस से अधिक कठिन और भयानक था जितना आज कल टामसकुक के यात्रियों का है जो भूगोल की प्रदक्षिणा कर सकते हैं। मुसलमानों के आने के बहुत पहिले हिन्दुओं पर जाति ने अपना पूरा अधिकार कर छोड़ा था और अशोक और चन्द्रगुप्त के प्रतापी समय की कहानियां भुला दी जा चुकी थीं तथापि मुसल्मानी बस्ती में उन लोगों का भाग अधिक था जो या तो अंन्यदेशों के निवासी थे या वहां हो आये थे। परन्तु कुछ धरातलीय सुविधाओं के अतिरिक्त अन्य देशों के साथ भारतवर्ष के इस थोड़े सम्बन्ध ने उसके निवासियों के जीवन पर कोई चर्चा करने योग्य प्रभाव नहीं डाला था। बरन धीरे धीरे यह सम्बन्ध कम ही होता गया और अन्त में सर्वथा टूट गया। अब यह प्रश्न उठता है कि मुसलमान यद्यपि विदेशी थे और जाति के बन्धन का लोप था तथापि न तो उन्होंने स्वयं ही अन्य देशों के साथ हेल-मेल बनाये रक्खा न इस प्रकार की रीतियों का साहस ही दिलाया। यदि थोड़ा सा और पीछे जाइये तो

यह भी प्रश्न होसकता है कि हिन्दुओं ने जो स्वयं भी किसी समय में भारतवर्ष के लिये विदेशी थे अपनी मध्य एशियाई जन्मभूमि के साथ सम्बन्ध क्यों न बनाये रक्खा । और फिर कुछ समय के पश्चात् सब विदेशियों की राहें क्यों बंद कर दीं । समुदायी विचार से इन दोनों प्रश्नों का एक ही साथ उत्तर दिया जा सकता है ।

उस प्रारम्भिक सनातन-प्रेम को समझने के लिये जिसने बाहरी हेल-मेल के प्रतिकूल पक्षपात उत्पन्न कर दिया था यह उचित है कि थोड़े समय के लिये हम वर्तमान समय के अबाध्योपक्रम को त्याग कर अपने ध्यान में यथाशक्ति उन दशाओं को लाने का उद्योग करें जिनके कारण पुरानी समाजों को अपने लिये जीवित रखना आवश्यक था और उन प्रणों को भी ध्यान में रक्खें जिनके अनुकरण से सफलता की सम्भावना थी किसी अर्थनीति से प्रथम समय के सम्बन्ध में कथन है कि यह वह समय था कि जब अर्थनीति विद्या के कल्पित नियम न तो संसार ही में आये थे और न उस समय के तुल्य थे । यह वह समय था जब कि मज़दूरी करनेवाले और पूंजी रखनेवाले अपने अपने उद्यमों को इस हेतु हटा नहीं सकते थे कि सर्व उद्यम वंशपरम्परा से चले आते थे हटाने के योग्य पूंजी बहुत थोड़ी थी और शासन चिरस्थायी न था और स्वतन्त्र व्यापार, सामना, उस

समय में उस समाज को नष्ट-भ्रष्ट कर डालता जो उन्हें ग्रहण करता । इसमें संदेह नहीं है कि मानुषीय जीवन के लिये "प्रारम्भिक समय" भी था और जब उस समय में न केवल अर्थनीति के नियम ही अयोग्य प्रतिपालन थे बरन और बहुत से नियम व स्वयं सिद्धि भी । अथवा यह कहिये कि उस समय में सर्वथा प्रतिकूल नियम मनुष्यों के लिये लाभ-दायक प्रतीत होते थे—प्राचीन समाजों में जब मानुषी प्रकृति संगठित हो रही थी जाति का प्रथम कर्तव्य यह था कि वह जीवित रहें । यह वह समय था जब मानुषीय दलों में न तो कोई लगाव था और न कोई प्रबन्ध, परम्परा का विरोध अत्यन्त पशुवत् और पारिवारिक लड़ाइयां इस प्रकार हुआ करती थीं कि न तो कोई शरण में आता और न जीवदान दिया जाता था । उस समय में जातीय रोक कम से कम इतना ही कठिन समझी जाती थी । जितना कि आज कल कुछ विस्तृत राज्य प्राचीन काल के समय के समान उसे समझ रहे हैं उस स्वाभाविक कलह-प्रिय समय में झगड़ालू और लड़ाका होना आवश्यक था । और सैनिक सफलता के हेतु प्रबन्ध सब से अधिक प्रयोजनीय । किसी दल के बिखरे कणों को एकत्रित कर नवीन योग फल प्राप्त करने के लिये यह उचित था कि वह दल दूसरे दलों से पृथक् रहे । और जिस प्रकार प्रत्येक

दल के सरदारों में ऐसे अधिकारों का होना आवश्यक था जिसका प्रतिपालन करना आवश्यक हो । इसी प्रकार पक्षों में पारस्परिक द्वेष और बदला लेने का सब से बढ़ा हुआ कर्तव्य भी था । उस समय यह सम्भव न था कि कोई दल अपने सभासदों को दूसरे पक्ष के मुखियाओं से मित्रता करने उनके साथ व्यापार करने या उनमें आने-जाने की आज्ञा दे क्योंकि उस समय में किसी अन्य दल में चला जाना ही अपने दल को त्याग देने के बराबर गिना जाता था । इस समय के एक प्रसिद्ध वीर अर्थात् 'नैपोलियन' का कथन है कि एक जाति को दूसरी जाति के अतिरिक्त और किसी से शत्रुता नहीं हुआ करती । प्राचीन समय में जातियों के मध्य वैर ही प्राकृतिक स्थिति का कारण समझा जाता था यदि कोई दल किसी उपजाऊ खण्ड को खोजकर लेता या किसी प्रकार अपनी जीविका का यत्न निकाल लेता या युद्ध या शिल्प के किसी प्रकार के अस्त्र का आविष्कार करता तो उसका लाभ इसमें ही था कि अन्य दल उस से अज्ञात रहें । इसलिये कि वह समय व्यवसायी सन्धि पंचों और जातियों के मध्य मित्रता का तो था ही नहीं बरन 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का समय था ।

मनुष्यों के मध्य 'कारलायल' के इन शब्दों के अनुसार कि "यातो तुम मुझे मारडालो या मैं तुम्हें मार डालूंगा" न्याय

हुआ करता था। और यदि कोई धनवान् दल अपने धन को अन्य दल पर प्रकाशित होजाने देता तो विना किसीअसमञ्जस के उस दलवाले उसे लूट लेते। पृथक्‌ता और दूरी उस समय के लिये आवश्यक थी और विदेशियों क साथ हेल-मेल जातीय विनाश का कारण था हिन्दोस्तान में यह अवस्था अर्थात् यह प्रारम्भिक समय बीते हुये बहुत समय होचुका और बहुत समय व्यतीत होजाने के पश्चात् फिर दशा में परिवर्तन होने लगा। इस बीच में यहां ऐसी उत्तम रहन-सहन की उन्नति हुई कि जिसकी प्रभा न केवल "सुनहरे समय वेद ही में" देख पड़ती है बरन उसकी प्रतिभा आजकल की गैस और बिजली के प्रकाशवाले समय में भी पड़ रही है। परिणाम यह हुआ कि रहन-सहन पहिले तो कुछ समय एकही दशा पर स्थित रहा और फिर उसकी घटती आरम्भ हुई। अब उस समय का आरम्भ है कि जो मुसल्मानों के समय से बहुत मिलता जुलता था। और जिसके पश्चात्‌ही मुसल्मानों का समय आरम्भ होगया था। समाज की सैनिक-दशा फिर से स्थापित हुई हिन्दू-राज्य टूट-फूट कर छोटे २ राज्य और रियासतें बन गईं। जागीरदारी के नियम उत्पन्न होगये और दलों का पारस्परिक द्वेष और डाह साधारण बातें होगईं। स्वार्थी पुरोहितों ने अपना शासन लोगों पर जमालिया रीति भांतियों ने जातीय जीवन के

समय को दृढ़ करके उसमें प्राचीनता उत्पन्न कर दी । जाति पांति के भेद का ऐसा कठिन जाल बिछाया कि जिसमें उन्नति रूपी सर्व पक्षी फँस कर रह गये । और निकृष्ट भाग यह हुआ कि सर्व अवगुण ऐसे समय में स्थित हुये जब कि पृथक्ता, धार्मिक व राजनैतिक हठ, व्यवसायों व कुटुम्बों के नियमित व पैत्रिक चिह्न, व बटवारे की कठिनाइयां कम होना आरम्भ होगई थीं और जब अन्यजातियां उन्नति के मार्ग में पग धर रही थीं । यह वह समय था जब कि अन्य जातियां ज्ञान के पड़ाव को पार करके उस पड़ाव में प्रवेश कर रही थीं कि जिसमें विवेक और उन्नति के नियम यद्यपि धुन्धले और निर्बल थे तथापि थे वही कि जिन्होंने शताब्दियों के लम्बे चौड़े समय में नवीन रहन-सहन को सङ्गठित करके सर्वोच्चपद पर पहुँचा दिया है उस समय हिन्दुओं की यह दशा थी कि उन्होंने अपने को भारतवर्ष की चार दिवारी में बन्द कर रक्खा था । और विदेशयात्रा को घोर पाप समझ कर विदेशियों से मेल-मिलाप तोड़ दिया । चाहिये तो यह था कि वे उन कर्मों से लाभ उठाते जो और लोग भूगोल के अन्य भागों में कर रहे थे हिन्दुओं ने उनको यद्यपि किसी समय में वह स्वयं ही उनके प्रतिपालक थे भुला दिया । यही वह समय था कि जिसमें एक विशेष वंश ने विद्या को अपने आधीन लेलिया । जातीय दल के

चढ़ते हुये प्रभाव ने राजनैतिक-जीवन की जड़ उखाड़ दी और जातीय द्वेषों का बिया ऐसा बोया गया कि समाज को उसने भीतर ही भीतर खा लिया और अन्त में विदेशी चढ़ाइयों का भी यही कारण हुआ। भारत-इतिहास में यह अन्धकार का समय था और यद्यपि कुछ समय के लिये मुसल्मानी रहन-सहन के प्रकाश ने दीप्तिमान् उलूक बनकर इसमें ज्योति उत्पन्न करदी परन्तु अन्तमें धार्मिक उमङ्ग और पराजय करने की वह इच्छा जिसने आदि समय में मुसल्मानों की विद्या और रहन-सहन को अनेक देशों में पहुंचा दिया था मिथ्या और नाशवान् सिद्ध हुई और निदान मुसल्मानी समय में भी वही परिवर्तित जीवन दृष्टि-गोचर होने लगा जो हिन्दुओं के समय में हुआ था हमारे जातीय जीवन का भी वह लम्बा और अप्रिय समय है जिस पर डाक्टर 'आरनल्ड' के ये शब्द भलीभांति तुलते हैं "निस्सन्देह, मिश्र और भारतवर्ष के जातीय-व्यवसायों का राजनैतिक-प्रबन्ध उचित-रीति से अपने यहां के निवासियों को सामुद्रिक अनभवों से विलग रखने की चेष्टा करता था, और सामुद्रिक उद्यमों को उच्च जातियों की पवित्रता से दूर प्रकट करने में लीन रहा करता था। समुद्र अवश्य इस योग्य था कि प्राचीन धन मान उससे वैर रक्खें। इसलिये कि अब मनुष्य-जाति को रहन-सहन सिखलाने में यह सबसे अधिक दृढ़ यन्त्र सिद्ध हुआ है।

अतएव, यद्यपि इस काम की साक्षी उपस्थित है कि बीते हुये दो सहस्र वर्षों में हिन्दोस्तान और अन्य देशों के मध्य व्यापारीय आवागमन था परन्तु यह सम्भव नहीं है कि यह बहुत अधिक हो। और इस विषय मे इतिहासीय साक्षी की दृढ़ता हमारा वह ज्ञान करता है जो हमें उस समय के भारतीय जीविका करनेवाली जातियों के सम्बन्ध में प्राप्त है। यात्रा की ओर प्ररणा अर्थात् एक दश से दूसरे देश को जाना अपरिचित मनुष्यों से मिलना और आश्चर्यजनक नवीन दृश्यों का निरीक्षण करना साहस और भाग्य की परीक्षा करनेवाले आत्मा से प्राप्त होता है जिसमें स्वयं विद्या-प्राप्ति की इच्छा के अतिरिक्त ज्ञान की प्राप्ति और राज्य-प्रबन्ध की निपुणता मूल विषय हैं। जिसका उदाहरण यह है कि योरप में जो विद्यासंचार पंद्रहवीं शताब्दी में हुआ उसने ज्ञानप्राप्ति की वैज्ञानिक इच्छामें अत्यन्त दृढ़ प्रेरणा उत्पन्न करदी। अमेरिका के खोज ने राज्य-प्रबन्ध की उत्तेजित आत्मा को शुक्र नक्षत्र की उँचाई पर पहुँचा दिया। अतः नवीन इतिहास के इन दो बड़ी घटनाओं का समुदाय-प्रभाव यह हुआ कि व्यापारीय प्रेरणा, भ्रमण इच्छा और नवीन देशों के खोज लगाने का साहस उत्पन्न हुआ। भारतवर्ष में न तो बहिर्वर्ती ज्ञान प्राप्त करने के विद्या की इच्छाही थी और न भ्रमण-साहस

राज्य-प्रबन्ध में हठ ने लोगों को शासनीय-आत्मा को मन्द कर दिया था और उनकी बुद्धि जातीय हठ की दासी बन चुकी थी । आवश्यकतायें अति सूक्ष्म और साधारण थीं और सहज में पूर्ण हो जाती थीं अतएव पवित्रता आचरण का बड़ा नियम समझा जाने लगा था और जाति पांति के अन्तर ने प्रत्येक मनुष्य को अपनी पैत्रिक दशा के साथ बद्ध करके एक ओर तो आत्म-उद्योग की प्रेरक-शक्ति को फालिज-ग्रसित वना दिया था और दूसरी ओर पुरुषार्थ की इन्द्रियों को नष्ट कर डाला था । राज्य जो चिरस्थायी और हठ का था अन्य देशों के सङ्ग हेल-मेल रखने का साहस न बढ़ाता था और स्वयं बुद्धि भी जो पुरोहितों की सर्वथा दासी होकर प्राचीनत्व प्रेमी बन चुकी थी इस प्रकार की यात्रा की ओर आकर्षित न किया करती थी । भ्रमण इच्छा इस कारण से लुप्त हो गई थी कि इस अभिलाषा की उन्नति करने के लिये न तो बुद्धिही में उमङ्ग थी और न राज्य-प्रबन्ध की उत्तेजना ।

भारतवर्ष में अंग्रेज़ों के आगमन से एक नवीन समय आरम्भ हुआ जबकि मेरे विचार में विदेशयात्रा की प्रेरणा उन परिवर्तनों का भावीफल है जो अंग्रेज़ी अथवा योरपीय प्रभावों ने हमारे जीवन और विचारों में उत्पन्न किये हैं तो इस स्थान पर उनका सूक्ष्म वर्णन करना मैं आवश्यक

समझता हूं । नवीन समय के समझने के लिये प्राचीन समय का अत्यन्त शुद्ध ज्ञान आवश्यक है । प्राचीन समय में पैत्रिक नियमों और न्यायी राजा का अनुगामी होना प्रबन्ध में भली भांति प्रचलित था प्रजा को शासन में न तो कोई गम्य थी और न मन-रुचि का अवसर और देश-अधिकारी को उनपर पूरा स्वत्व प्राप्त था धर्म के विषय में जातीय मत के रक्षक पुरोहित थे प्राचीन समय की पवित्रता कर्मों में पड़ कर यद्यपि सर्वथा नाश को न प्राप्त हुई तथापि धुंधली अवश्य हो गई थी सर्व साधारण के विश्वास की नीव दन्तकथाओं पर अधिकतर थी । धर्म से विरोधिता या उसमें किसी प्रकार का सन्देह महापाप समझा जाता था और " अग्नि दण्ड से साक्षी " अर्थात् नरक से बचने के लिये चांदी सोने की भेंट वैसीही प्रबलता के साथ प्रचलित थी जैसा कि कैथौलिक के कलीस के निकृष्ट समय में थी आचरण-सम्बन्ध में संयम-नियम का प्रभुत्व था परन्तु मानुषी प्राकृति भी कभी कभी इस प्रकार बदला लेती थी कि पुरोहित और पण्डितों में मानुषीय आचार के निकृष्ट उदाहरण मिलते थे । गृह-सम्बन्धी जीवन में पिता के नियमों का शासन था । और स्त्रियों और बच्चों को किसी प्रकार का पद प्राप्त न था बरन वंशमुखिया के धन धान्य के समान मानो वे भी एक प्रकार का धन हुआ

करत थे । शीलता, प्रेम, दया, उदारता और सत्यता के गुण मनुष्यों की निज रीतियों स लुप्त न थ परन्तु देश-भक्तीय चित्तवेग से सब इसलिये अज्ञात थे कि जातीय-चित्तवेग विद्यमान ही न था । लोग जाति, वर्ग वंश समाज यूथ के आज्ञापालन की आवश्यकता समझा करते थे परन्तु जातीय महान विस्तृत प्रभाव जो सर्वदेश को घेर ले इनमें न था । नियम व शान्ति की शक्तियां निर्बल थीं पूँजी और जीवन ऐसी अशान्ति में था कि द्रव्य प्राप्त करने और एकत्र करने की उत्तेजना निकटतम लुप्त हो गई थी और इसी कारण सैनिक उद्यमों को और सब पर श्रेष्ठता प्राप्त थी अत: शिल्प-कला-कौशल की उमङ्ग भी कम थी । और विद्या और शिल्पीय-उन्नति की इच्छा ही जातीय अन्त:करण और मस्तिष्क से जाती रही थी ।

अंग्रेज़ों के आगमन के पहिले के समय का यह बहुत ही अंधेरा चित्र मैंने खींचा है परन्तु उसके साथही मैं यह भी कहूंगा कि इस अवसर पर मैंने बहुत से गुण केवल इस विचार से नहीं दिखलाये हैं कि उनका कोई बड़ा सम्बन्ध हमारे वर्त्तमान वार्तालाप से नहीं है ।

अब हम नवीन समय की ओर ध्यान देते हैं । इस समय का सब से बड़ा परिवर्तन शासन के बदलने को समझना चाहिये इसलिये कि नवीन शासन नियमत: सर्व-

प्रिय और कर्मत: थोड़ा बहुत हठी है । यद्यपि यह स्वतन्त्र लोगों के हाथ में है परन्तु ऐसे देश में जहां के मनुष्य स्वतन्त्रता के नाम को भी नहीं जानते । इस शासन-पद्धति में नवीन हेल-मेल की वे सर्व शक्तियां विद्यमान हैं जो सहस्रों प्रकार से हमारे जातीय जीवन में परिवर्तन और शुद्धता का संचार कर रही हैं, भारतवर्ष में बुद्धयात्मिका जागृति लार्ड बेंटिंग से बहुत पूर्व आरम्भ हो चुकी थी परन्तु उनके समय से इस जाग्रदवस्था में अनुपम-बल और तीव्रता उत्पन्न हुई । इस शताब्दी के आरम्भ ही में भारत के कुछ भागों के शिक्षित दल योरपीय विद्याओं व गुणों को ज्ञात करने लगे थे और यह फल अधिकतर वङ्ग देश में प्रकट हुआ जहां परम शुद्धता के प्रेरणा की नीव ब्रह्मसमाजीय वेष में राजा-राम-मोहन-राय ऐसे प्रसिद्ध मनुष्य ने डाल दी और यह महाशय प्रथम भारतवासी थे जिन्होंने समुद्रपार करके इंग्लिस्तानकी यात्रा ग्रहण की । उन पर अंग्रेज़ी हेल-मेल का प्रभाव बहुत ही प्रबल पड़ा और उसका उदाहरण हमारे देश वासियों में से बहुत से दृढ़ और तीव्र मस्तिष्कवालों पर प्रभावशाली सिद्ध हुआ भारतवर्ष की जातीय जागृति का इस प्रकार आरम्भ हुआ और तत्पश्चात् 'मेटकाफ' और 'बेंटिंग' की शिक्षा व राज्य-सम्बन्धी नीतियों ने इस शिक्षा को भलीही भांति सहायता दी सर्कारी स्कूलों और कालिजों में उच्च शिक्षाकी रीतियां धर्म

व वहुतेरी छोटी २ पुस्तकों में कहने व सुनने की स्वतन्त्रता के नियमों का स्वीकार किया जाना ऐसे दो विशाल कर्म थे जिन्होंने पठन-पाठन की उमङ्ग सभ्य समुदाय में इस सीमा तक उत्पन्न कर दी कि उसकी उपमा विद्यासंचार के समय से लेकर अब तक हाथ नहीं आती । पंद्रहवीं शताब्दी के एक विद्वान् का कथन है " मैं मृतक-मनुष्यों को जगाने जाता हूं " ऐसेही विचारों की नीव पर लोग अंग्रेज़ी सभ्यता, विद्या व गुणों की ओर आकर्षित हुये परन्तु योरपके समान यहां भी साइंस और दर्शन-शास्त्र के स्थान में प्राचीन अध्यापकों के आचार-सम्बन्धी साहित्य के गुणों ने सब को मोहित कर लिया और इस देश में भी यद्यपि आरम्भ में पण्डित लोग आपस में विद्या पढ़ने की ओर आकर्षित न हुये तथापि आरम्भ ही से बड़े उत्साह और उमङ्ग से आचार-सम्बन्धी शिक्षा ग्रहण कर ली गई । सर्व साधारण के लिये शिक्षा के स्थापित होते ही विशेष जाति अथवा दल से विद्या का प्रभुत्व टूट गया और व्यावसायिक जातियों की सर्व श्रेणियों में वैज्ञानिक-शिक्षा व अभ्यास की इच्छा और रसिकता फैल गई । इस प्रकार जो बुद्ध्यात्मक उमङ्ग उठी उसने बुद्धि और परिवर्तन के स्थान पाने के द्वारा प्राचीन प्रबन्ध को पराजित कर दिया । वहुत दिनों तक उपाय करते रहने के पश्चात् इस देश के विचार और बुद्धिमत्ता को स्वत-

न्त्रता प्राप्त हुई और प्रेम व आनन्द के घेरे में उसने पग रक्खा अतः उन सर्व वृन्दों में उसका केवल प्रकाश होने लगा कि जिनसे देश व धर्म के मुखिये उसको अधिकार-हीन किय हुये थे। विद्याभिलाषा व अभिज्ञता की प्राप्ति के संगही संग राजनैतिक इच्छायें इसलिये उत्पन्न होगई कि भारतवासियों को अंग्रेज़ी सभ्यता, व अंग्रेज़ी इतिहास से प्रजा के नवीन विचार और जीवन के नवीन उद्देश्य हाथ आ गये थे और उन्हें प्रथम ही समय यह ज्ञात होने लगा था कि स्वतन्त्रतापूर्वक जो उद्यम चाहें ग्रहण कर लें और अपनी योग्यता के बल से जिस पद पर चाहें नियुक्त हो जायं। जिन लोगों को अंग्रेज़ी सभ्यता से प्रेम हुआ वह प्रकृतितः उसकी जन्मभूमि देखने के भी उत्कण्ठित हुये और जिन लोगों के हृदय और मस्तिष्क योरपीय कला-कौशल और आविष्कारों पर मोहित हो गये थे और जिनके नेत्रों के आगे योरपीय रहन-सहन ने मनोरञ्जन और आनन्दों के नवीन संसार की रचना की थी वह चिरकाल तक योरपीय विचार, रसिकता, स्वभाव और कालक्षेप के मनोहर प्रभावों से बच न सके।

प्राचीन समय का जादू टूट गया और उन्नति के नवीन द्वार खुल गये। उमङ्ग चित्तवाले मनुष्यों में उमङ्ग उत्पन्न हुई और उनकी आश्चर्यित-दृष्टि के आगे बड़ी उत्तेजना के

साथ एक नवीन अधिक रोचक समय आने लगा इस नवीन जागे हुये भारतीय दल के सम्बन्ध में हम 'शैली' के पद्य का गद्य में उचित रीति से निर्वाचन उपस्थित कर सकते हैं " संसार का सर्वोत्तम समय फिर से आरम्भ होने को है और सुनहरे वर्ष फिर लौटे आ रहे हैं । वृद्ध आकाश भी पृथ्वी को सर्प के समान अपनी जीर्ण केचुली बदलते देखकर मुसकाय रहा है और धर्म व राज्य स्वप्नवत् दृष्टि आते हैं " भारतीय समझ की प्राचीनता से विरोध अथवा दूसरे शब्दों में नवीनता की उमङ्ग भरी अभिलाषा उन परि-वर्तनों का चिन्ह और भावी कही जासक्ती है जिन्होंने हमारे विचार व प्रबन्धों को नवीन-जीवन की आवश्यकतानुसार कर दिया और इस अभीष्ट के सिद्ध होने के मार्ग एकत्रित किये। अतः उन्हीं मार्गों में से विदेशयात्रा की प्रेरणा भी समझनी चाहिये । यह भावी थी और इसीलिये सम्मुख आई। राजा राममोहन राय के विचारों ने भविष्य इच्छाओं और उद्देश्यों को प्रथम ही से प्रारम्भ किया। पचास वर्ष पहिले उन्होंने जो बिया सरसों के बराबर बोया था वह अन्त में बढ़ा और आज बढ़कर एक विशाल वृक्ष दृष्टि आता है। उसकी विशालता का उचित अनुमान हम उस समय तक नहीं कर सकते जब तक कि हम अपनी नवीन गति और दशाओं को न समझ लें।

पश्चिमीय शिक्षा का प्रभाव अब शिखर पर पहुंच गया है और इस देश में आज कल उसके अध्यापक अंग्रेज़ हैं। यह स्पष्ट है कि हमारी उन्नति और हमारा आनन्दमय जीवन जिस अर्थ में कि आज-कल यह समझा जा रहा है अधिकतर इस पर निर्भर है कि हम उन विद्याओं और गुणों को प्राप्त करें और हममें वे प्रयोगी और भाग्यपरीक्षक उत्साह उत्पन्न हों जिनके प्राप्त होने से अंग्रेज़ स्वयं इतनी उन्नति कर गये हैं।

जातीय भलाई के लिये कदाचित् उनको छोड़ कर जो थियोसफी और गुप्त बौद्ध धर्म ने बताया है और कोई मार्ग नहीं हैं परन्तु उसके स्वीकार करने पर इस समय जाति सम्मत नहीं है। आज कल के समय में विद्या, शक्ति की पर्यायवाची है और अंग्रेज़ी राज्य-चक्र में एकमात्र खड्ग के स्थान में मन्त्रणा अथवा विवेक का शासन है और वहीं आकर हमको कठिनाइयों से सामना करना पड़ता है। पूर्व समय में हम और हमारा शासक-दल खड्ग चलाने में समान अधिकार रखते थे अर्थात् प्रजा और शासक-दल में कोई अन्तर शस्त्र धारण करने के विचार से न था और वह दल जिसकी चर्चा अन्त में हुई है हमपर कोई जातीय विशाल प्रभुताई न रखता था और हमारे और उसके मध्य कोई विस्तृत जीविका की खाड़ी विरोधिता के रूप

में उपस्थित न थी । परन्तु वह समय अब बीत गया इस समय में प्रत्येक वस्तु इतनी जटिल होगई है कि उसमें पूर्ण-रीति से बुद्धि लड़ाने की आवश्यकता पड़ती है " उस समय यदि हमारी दशा संख्याओं के योग-समान थी तो अब वह गणित-विद्या के सब से कठिन और अन्तिम पर्व के समान है " अब हमारी शासक-जाति वह जाति है जो भर पूर शान्ति और युद्ध विद्या दोनों में हमसे बढ़ी हुई है । हम स्वीकार किये लेते हैं कि केवल भावना, धर्म और आचरण में वे हमारी समता के नहीं हैं परन्तु उनको हर समय अनुगामी होने के लिये ऐसा सत्य-ज्ञान, अनेकों परीक्षाओं और निरीक्षणों से परिपूर्ण विद्यमान है और उनके पास यन्त्र आविष्कार करने के लिये यन्त्रालय ऐसा परिपूर्ण है कि एशियाई मस्तिष्क आश्चार्यित होकर रह जाते हैं । इन्हीं द्वाराओं के प्रताप से उनको हमपर जीवन के सर्व प्रयोगी सम्बन्धों में प्रभुता प्राप्त है और वह शासन ऐसा स्थापित हुआ है कि उसमें विद्या और विवेक को बहुत कुछ गम्य है । उनकी मन्त्रणाओं में सम्मति को विशेष प्रभुताई दीजाती है परन्तु इस प्रभुता को प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि जो सम्मति दीजावे वह केवल अभिज्ञता और स्पष्ट विचारों ही पर निर्भर न हो परन्तु उसमें ये दोनों विशेष बातें ऐसी स्पष्ट हों कि स्वयं हमारे शासक भी उसे

स्वीकार करलें । इसलिये कि प्रभुता पाई हुई जाति सदा अपने से छोटों को घृणित दृष्टि से देखती है और उनकी सम्मतियों से बेपरवाही किया करती है (अतः साहबान अंग्रेज़ हमारी साधारण सम्मतियों पर करते हैं) अतएव उचित है कि हमारी सम्मतियां स्पष्ट, शुद्ध और अशुद्धता के मेल से बची हों कि कोई सत्यवादी मनुष्य उनपर ध्यानावर्तित होकर 'नहीं' न कर सके। भाव यह है कि यद्यपि विद्या और विवेक विशेष आवश्यक हैं तथापि यदि हमें अपने राज्य प्रबन्ध की दशा में उन्नति करना है तो हमें आवश्यक है कि ज्ञानक्षेत्र में उच्चतर-जाति के साथ समता करने में श्रेष्ठ निकलें ।

यदि हमें अपने देश के प्रबन्ध में योग्यता और प्रधानता प्राप्त करने की सच्ची इच्छा है तो उचित है कि हम उस विद्या व सभ्यता को प्राप्त करलें जो प्रतिष्ठा और प्रसिद्धता के लिये पाहरूपद-ग्रहण के पर्यायवाची हैं । यदि हम अपने शासक के बुद्ध्यात्मक धरातल तक पहुंच जायं तो उसके साथ ही हम उनके राजनैतिक धरातल तक भी पहुंच जायंगे । राजनैतिक मध्यमाएं भी तब ही प्राप्त होंगी जब पहिले बुद्ध्यात्मक मध्यमाएं हाथ आजायं ।

परन्तु उन सर्व राज्य-प्रबन्धों को भुलाकरके जो भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा की सहायता के भावी फल होंगे इस

शिक्षा की आवश्यकता अतिस्पष्ट और अधिक इसलिये है कि अपना पेट तो भर सकें क्योंकि सब से पहिले तो यह उद्यम करें कि हम जीवित रहें अर्थात् स्वतन्त्रता की प्राप्ति तो पीछे है पहिले जीवित रहने के उपाय होने चाहियें। क्योंकि हमारे देश की इस समय यह दशा है कि यदि हम कभी सांसारिक-पदार्थ और धन-संचय करने का भी प्रयत्न करें तो शासन के हेतु सदा उद्योग करते रहने की अपेक्षा अधिक लाभदायक होगा।

जब हम यह देखते हैं कि देश व धर्म के मुखिया पेट-पालन के कठिन सिद्धान्त में कितने आलस्य से काम लेते हैं और शिल्पविद्या, व्यवसाय और धन प्राप्तकरने व जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में कितने निश्चिन्त हैं तो मेरे हृदय में यह विचार उठने लगता है कि देश का इसी में लाभ है कि हम लोग अपने परम उद्देश्य को थोड़े समयके लिये भूल जायं और उनसे छोटे २ परन्तु अधिक लाभदायक कार्यों में प्रवृत्त हो जायं अर्थात् "यान्त्रिक उन्नति" की वृद्धावस्था के समान राख व धूरी में काम करें और उस देवता की ओर आकर्षित न हों जो हीरा, मोती, सोना, रुपया देने के लिये प्रस्तुत है हमारी वर्त्तमान दशा क्या है?

विज्ञानसम्बन्धी उद्यमों में समानता की हाट इतनी उत्तेजित है कि अब उससे अधिक प्रचण्ड नहीं हो सकती

ऐसा कोई पद नहीं है जिसकेलिये उम्मेदवारों (आर्थियों) की एक बड़ी भीड़ विद्यमान न हो हर फाटक पर प्रार्थियों की भीड़ है और सर्व हाटें भरी पड़ी हैं । सरकारी नौकरी के श्रेष्ठ पदों के लिये विलायत जाना निश्चित है । हकीमी, न्याय, इंजीनियरी, कृषिकर्म में यदि शिक्षा प्राप्त करनी हो तो बिना विलायत गये उपाय नहीं और वहां जाकर भी हमारे हिन्दी युवकों को इंगलदेश के श्रेष्ठ युवकों से सामना पड़ता हैं क्या यही एक कार्य हमारे नेत्रों का पर्दा उठा देने के लिये पूरा (सब कुछ) नहीं है ? मैं पूछता हूँ कि क्या कभी भारतवासियों को चिरस्थायी झगड़े में इससे अधिक भारी कठिनाइयों से सामना पड़ा है ? इस सामना करने में निष्फलता का अर्थनाश होजाना है । यद्यपि सरकारी नौकरी और विद्यासम्बन्धी उद्यमों का देशके धनी होने के मार्गों की उन्नति में थोड़ा ही प्रवेश है और अब जातीय उन्नति की हरियाली व्यापार व कला-कौशल की उन्नति पर निर्भर है तथापि हमारी तो यह दशा होरही है कि हमारे हाथ में न तो मोक्ष है और न कोई चर्चा करने के योग्य कला-कौशल । हमारे प्राचीन देशी शिल्प-कला-कौशल या तो कम होगये या लुप्त हैं । और उनको कम होना भी था इसलिये कि पुराने धुराने अस्त्र और यन्त्र वर्तमान आविष्कारों के सम्मुख सर्वथा निकम्मे हैं भला मानुषी नस, पुट्ठों और धुएं के कलरूपी

भूतों के लोहित हाथों की क्या समता पूर्व समय में यदि बस्ती बढ़ जाती थी तो उसकी रोंक समुदायी चढ़ाइयों के फैलाव करदिया करते थे परन्तु आजकल बस्ती का बढ़ती भाग नवीन बस्तियों के बसाने के काम आता है और अन्य देशों में व्यापारी बनकर " प्रभाविक सभाओं " के द्वारा जा घुसती हैं और इस प्रकार " पराजितपर्त्र " के बुद्धिमान् प्रबन्ध के द्वारा निर्बल *जातियों को हानि पहुँचा कर पेट भरती हैं—योरपीय देश में व्यापारी—सामना बड़ी तीव्रता से हो रहा है और बस्ती की अधिकता का बोझ ज्ञात होना आरम्भ हो गया है । जिसका परिणाम यह है कि नवीन बस्तियों के बसाने की कार्यवाही शीघ्रता से बढ़ रही है* । और जातियों की मस्तिष्क-शक्तियां शिल्प-कला-कौशल की उन्नति और कल पुरज़ों (यन्त्रों) के आविष्कार में व्यय की जारही हैं । अब भारतवर्ष ऐसे योरप के सम्मुख विद्यमान है जो ललचाईहुई दृष्टियां अन्य जातियों के आधीन स्थानों पर डाल रहा है । और हर समय नवीन मैदान और नवीन हरे भरे स्थानों की खोज में अपनी बढ़ती बस्ती के भाग के व्यय में लगा हुआ है—ऐसे योरप के साथ किस प्रकार मिलना चाहिये । अपना भोजन विदेशियों के हाथों से किस प्रकार सुरक्षित रक्खा जाय । स्वतन्त्र व्यापार के फंदों से अपने शिल्प-कला-कौशल को किस प्रकार से बचाया जाय

और स्वयं अपनी ही उस बढ़ती बस्ती के भाग के लिये कैसा अजर-अमर बल एकत्र करना चाहिये जिसको भारतवर्ष से बाहर और वर्तानियाराज्य के भीतर सिवाय घृणा अपयश और सेवकाई के कुछ प्राप्त नहीं है।

यही वे सब सिद्धान्त हैं जिन्हें हिन्दोस्तानियों को सिद्ध करना है और यदि वे इस "परमभयानक" भेद के जादू को सिद्ध न कर सके तो नाश होने से उन्हें कोई बचा नहीं सकता। सब प्रकार यह तो स्पष्ट ही है कि शिल्प-कला-कौशलीय झगड़ों ने अत्यन्त भयानक दशा पकड़ी है और उसमें सफलता की आशा रखना तब ही सम्भव है जब हम उन्हीं उन्नत देशों के शस्त्रों से सुसज्जित होकर लड़ें जो हमारे शत्रु प्रयोग में ला रहे हैं अतएव शिल्प-कला-कौशल और व्यापारीय शिक्षा परमावश्यक है।

इस अवसर पर सम्भव है कि यह वाद-विवाद उपस्थित किया जावे कि यह सब तो उच्च शिक्षा और शिल्प-कला-कौशल के विषय में कहा गया है और मैं स्वीकार करता हूँ कि यथार्थ में है भी ऐसा ही परन्तु उसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि जो कुछ ऊपर लिखा गया है उसका एक और भी भाव है अर्थात् उसके द्वारा "विदेशयात्रा" की भी विकालत होती है इसलिये कि यदि उत्तम शिक्षा और शिल्प-कला-कौशलीय अभ्यास श्रेष्ठ है तो उनको सबसे उत्तम रीति

से प्राप्त करना भी अत्यन्त आवश्यक है । इससे तो कोई मनुष्य 'नहीं' नहीं कर सकता कि भारतवर्ष की अपेक्षा अन्य योरपीय देशों में वैज्ञानिक शिल्प-कला-कौशल और गुण-सम्बन्धी शिक्षा व अभ्यास के लिये बहुत अधिक सुभीता है परन्तु मैं इस सिद्धान्त को इस अवसर पर थोड़ी व्याख्या के साथ इस हेतु वर्णन करूंगा कि सर्वसाधारण पर भली प्रकार प्रकाशित होसके हमारा सम्बन्ध अधिकतर इंग्लिस्तान ही से है अतएव मैं अपने रिमार्क अधिकतर इंग्लिस्तान ही से घिरे हुए रक्खूंगा । इंग्लिस्तान के पठन-पाठन की रीतियां बुद्धयात्मक विचार से ही श्रेष्ठ नहीं हैं बरन उनसे विद्यार्थी पर कुछ ऐसे प्रभाव पड़ते हैं जो उसकेलिये बहुत ही कठिन हैं और वे हमारे स्कूल और कालिजों में लुप्त हैं अतएव उन्हीं के कारण अंग्रेज़ी शिक्षा पर बहुत कुछ भले बुरे दोष आरोपण किये जाते हैं ।

मैं गुणों की शिक्षा और शिल्पीय कला-कौशल व व्यवसायसम्बन्धी अभ्यास पर सब से प्रथम विचार करूंगा । आजकल भारतवर्ष में शिल्प-कला-कौशल व व्यवसाय की शिक्षा का कोई नियमित प्रबन्ध नहीं है । सम्भव है कि समय के हेर-फेर से मिस्टर टाटाका का विचार इस विषय में हमारे लिये अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हो लेकिन इस समय तक तो भारतवासियों का व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करना स्वप्न से

अधिक प्रतिष्ठा नहीं रखता जो सम्भव है कि भविष्य में पूरा होजाय इंग्लिस्तान में इस प्रकार की कोई कठिनता नहीं है इसलिये कि शिल्प-कला-कौशल व व्यवसाय में पुस्तकीय और अन्य शिक्षाओं के लिये वहां कारखाना जात (यन्त्रालय) इत्यादि विद्यमान हैं और यद्यपि वे स्वतन्त्रता के साथ भारतवासियों को भरती नहीं करते परन्तु अंग्रेज़ मित्रों की सहायता से उनकी भरती सम्भव है । इसी कारण से इंग्लिस्तान भारतवासियों की शिल्पीय शिक्षा व अभ्यास के लिये सब से उत्तम स्थान है परन्तु इससे बढ़ कर एक और कारण भी है जिसके कारण हम इंग्लिस्तान को बड़ाई देते हैं । भारतवर्ष के लिये यही क्या कम है कि यह कुछ समय के लिये शिल्पीय कला-कौशल में रहे-सहे उसको प्रयोगीय दशा में देखे, सबेरे से साँझ तक अनगिन्ती मुखों पर लंदन, और मांचिस्टर में शिल्पीय विषयों व व्यापार की मुहरें देखता रहे और बड़े २ शिल्पीय केन्द्रों में यन्त्रोंके आविष्कार के आश्चर्यजनक पदार्थों और सामना करनेवाली शत्रु-जातियों की उत्तेजना की परीक्षा करे । वह अपने समाज से तो अभिज्ञ होताही है अब यह भी आवश्यक है कि वह कुछ न कुछ इंग्लिस्तान के समाजों से भी अभिज्ञता प्राप्त करे । उचित है कि वह उसकी मनोहरता का ज्ञान प्राप्त करले उसके अनेक प्रभावों को जानले द्रव्य एकत्र

करनेवाली जातियों की चिन्तायें समझने लगे और उनकी जीवात्मा उसमें हिलोल करजाय ।

तुलना व समानता से उसे यह इन्द्रियज्ञान होने लगे कि उसका समाज किस प्रकार स्थिर व न हटनेवाला है। जिसमें न लालच का प्रवेश है न किसी प्रकार की उत्तेजना की समाई। यदि उसके समाज को द्रव्यप्राप्ति की इच्छा नहीं है तो फिर वह उन उत्तम पदार्थों स भी वञ्चित है जो रुपये पैसेही से प्राप्त हुआ करते हैं। यदि कोई चैतन्य मनुष्य थोड़े समय के लिये अंग्रेज़ी समाज में जा पड़े तो वह उसकी प्रकृतियों से अवश्य प्रभावित होकर रहेगा और यह कहने की आवश्यकता ही नहीं कि अंग्रेज़ी समाज पर नख से शिरलों शिलपीय रंग चढ़ा हुआ है इन लेखों का सम्बन्ध केवल विद्यार्थियों से नहीं है किन्तु वे हिन्दनिवासी भी हमारी दृष्टि के सम्मुख हैं जो अन्य देशों के साथ व्यापार में लीन हैं। ये लोग अगर अंग्रेज़ी जीवन से बराबर अभिज्ञ रहें उसके व्यापारीय भेदों पर विचार करते रहें उसकी "गर्मी की घबड़ाहट" को प्राप्त करलें और उसका प्रयोग और स्वभाव ग्रहण करलें तो उनको बहुत कुछ लाभ पहुँच सकता है। पार्सियों ने इस विषय में पग बढ़ाया इसलिये आज वह सर्व व्यापारी-दलों के सरदार हैं। यद्यपि दक्षिण के मुसलमान पारसियों के सामने कम

शिक्षित और प्रयोगी सिद्ध हुए हैं तथापि उन्होंने भी पच्छिम में अफ्रीका और अरब के साथ और पूरब में चीन और मलाया प्रायद्वीप के साथ व्यापारीय सम्बन्ध स्थापित करके अपनी दशा में बहुत कुछ उन्नति प्राप्त की है। यद्यपि हिन्दू भी नवीन जीवन की आवश्यकतायें और व्यापार की कठिनता समझने लगे हैं परन्तु अभी वे पारसियों और मुसलमानों से बहुत पीछे हैं। ये व्यापारी लोग अन्य देशोंमें व्यापार करके भारतवर्ष में चाँदी सोना और अन्य सुखदायी पदार्थों के अतिरिक्त कुछ और भी लाते हैं अर्थात् नवीन और अपरिमित देशों के अनुभव, साहस व भाग्यपरीक्षा की आत्मा, विस्तृत रूप से दया और नाना प्रकार के मनुष्यों के जीवन का शुद्ध ज्ञान। भारतवर्ष को इन सब बातों की बड़ी आवश्यकता है क्योंकि यद्यपि वे व्यापार व भ्रमण के फल हैं परन्तु वे उन पक्षपातों को निर्बल और रोक को दूर करते हैं जिनके कारण भारतवर्ष आजतक अन्य देशों से पृथक् रहा है और उन चित्तवृत्तियों को बलिष्ठ करके और उन इच्छाओं को उत्पन्न करके जिनसे समय के हेर-फेर से सर्व व्यापारी प्रेरणा के प्रचण्ड समुद्र में भारतवर्ष के पड़जाने की आशा की जा सकती है वे भ्रमण व व्यापार पर ध्यानावर्तित होकर चलते हैं और इस प्रेरणा को सहायता पहुँचाते

है। यद्यपि विचारणीय सिद्धान्त का यह रूप भी अत्यन्त कठिन है परन्तु मैं "विदेशयात्रा" के वैज्ञानिक बुद्धयात्मक और भ्रमणसम्बन्धी विभाग पर वाद-विवाद करता हूँ। इसलिये कि मुझे इस स्थान पर यह प्रकट करना है कि "विदेशयात्रा" का सम्बन्ध भारतीय युवकों की उच्च शिक्षा के साथ कितना और कैसा है।

अभी हमने दो वाद-विवादों का आरम्भ किया है प्रथम यह कि भारतवर्ष को वर्तमान समय की शिक्षा आवश्यक है दूसरे यह कि इस प्रकार की शिक्षा उत्तम रीति से इंग्लिस्तान ही में मिल सकती है। पहिले रूप में तो कोई झगड़ा नहीं परन्तु दूसरे सिद्धान्त पर कभी २ विरुद्ध सम्मतियां हो जाती हैं और विरोधी बातें कुछ इस प्रकार की होती हैं कि यदि कोई तीव्रबुद्धि विद्यार्थी अपनी बुद्धि को संवारा चाहे तो उसे स्वयं हमारी यूनिवर्सिटियों ही में उसका पूर्ण अवसर प्राप्त है। वह अंग्रेजी विद्या, सभ्यता, गुणों और दर्शन-शास्त्र और अन्य विद्याओं में शिक्षा प्राप्त करता है और उसकेलिये योग्य गुरु विद्यमान हैं जिनसे वह जो चाहे सीख सकता है आचारसम्बन्धी विद्या, दर्शन-शास्त्र और गुणों की बड़ी २ पुस्तकें उसे उतनी ही सरलता से मिल सकती हैं जितनी कि किसी अंग्रेज़ विद्यार्थी को स्वयं इंग्लिस्तान में। केशवचन्द्रसेन, क्रिष्टोदासपाल, राजिन्द्रलालमित्र, के.टी. तिलङ्ग

मिस्टर जस्टिस रानाडे और सर्टी माधवराव ने इंग्लिस्तान में रहकर एक अक्षर भी नहीं पढ़ा था परन्तु, प्रबललेख लिखने, बात-चीत करने, पत्र लिखने, विद्या, गुरुता और अंग्रेज़ी आचारों में उनकी समता का आज उनमें कोई दृष्टि नहीं पड़ता जो इंग्लिस्तान से शिक्षा प्राप्त करके आये हैं।

योग्य पुरुष हर स्थान में माननीय होकर रहेगा और आलसी पुरुष चाहे बङ्गाल की निर्बल जलवायु में रहे और चाहे इंग्लिस्तान के बलवर्धक दृश्य में बसे आलसी ही रहेगा। आचारसम्बन्धी शिक्षा जिस सीमा तक की स्कूल अथवा कालिज में दी जाती है वह कैम्बृज के कालिज और कलकत्ता के कालिज में समान है। बरन इंग्लिस्तान में रहकर तो वह दुखिया वंश और समाज के आचारसम्बन्धी बन्धनों से मुक्त हो जाता है। वर्तमान वादानुवाद के विषय का यह रूप तो एक सीमा तक अवश्य ठीक है परन्तु वह नख से शिख तक सत्यता व शुद्धता से परिपूर्ण नहीं कहा जासकता।

यह सत्य है कि साधारणतः इंग्लिस्तान से लौटे हुए विद्यार्थी सभ्यता अथवा स्वभाव में उन लोगों से कुछ उत्तम नहीं हैं जिनकी शिक्षा भारतवर्ष ही में हुई है। यह भी सत्य है कि भारतीय यूनिवर्सिटियों से पढ़ कर बहुत से ऐसे प्रतिष्ठित निकले हैं जो बुद्ध्यात्मक और आचारसम्बन्धी विचार से बहुत कुछ नाम व प्रतिष्ठा रखते हैं।

इन सर्व घटनाओं को स्वीकार करके भी हमारी यह सम्मति है कि यदि इस समय नहीं तो भविष्य में अवश्य इंग्लिस्तान में रहकर शिक्षा प्राप्त करने का परिणाम उससे कहीं अधिक उत्तम होगा जिसकी आशा हम किसी भारतीय शिक्षाप्रबन्ध से करते हैं । यद्यपि इंग्लिस्तान से लौटे हुए युवकों में बहुत से ऐसे पुरुष हैं जिनसे वे कार्य्य तो पूर्ण नहीं होते जिनके वे केन्द्र बनाये गये थे परन्तु इसकेलिये बहुत ही स्पष्ट और प्रकाशित कारण हैं जिनकी चर्चा मैं पीछे करूंगा । इस स्थान पर मैं अपने शिक्षाप्रबन्ध के कुछ बड़े २ दोष प्रकट करता हूं जिनको देख कर किसीकी यह आशङ्का शेष नहीं रह सकती कि हमें अपने युवकों को किसी अंग्रेज़ी यूनिवर्सिटी में सर्वोच्च और शुद्ध शिक्षा दिलाना आवश्यक है ।

एक भारतीय युवक का जो मध्यम श्रेणी की बुद्धि और विवेक रखता हो बुद्धि से स्थिर और नवीन समाज छोड़ कर ऐसे समाज में प्रवेश करना जो भांति २ के विचारों से परिपूर्ण है और जो बुद्धयात्मक व्याकुलता से परिपक्क दशा में हो रहा है भांति २ के प्रभावों से प्रभावित होना है नवीन जलवायु की गर्मी उत्पन्न करनेवाली व्याकुलता उसमें प्रवेश कर जाती है और वह भी ऐसी दशा में अपनी बुद्धि से काम लेना सीख जाता है जब वह देखता है कि उसके

पास पड़ोस में कोई मनुष्य भी अपना सीधा स्वभाव नहीं छोड़ता । सम्भव है कि वह बहुत सी पुस्तकें न पढ़े परन्तु यह असम्भव है कि केवल पारस्परिक हेल-मेल और निरीक्षण से वह ज्ञान न सीख जाय कैसा ज्ञान जिससे पुस्तकें हीन और जो पुस्तकों से परे है । प्रतिदिन क्या वरन हर घण्टे में उसे ऐसे मनुष्यों से मिलना पड़ता है जो बुद्धि में उस से बढ़े-चढ़े हैं । वह ज्ञात करता है कि जिस घर में वह अब निवास करता है वह उस घर से सर्वथा भिन्न है जिसे वह छोड़ कर आया है । उसके साथ भोजन करनेवाले उसके वायु-सेवन के साथी मूर्ख पुरुष अथवा स्त्री नहीं हैं वरन ऐसे पुरुष और स्त्रियां हैं जो शिर से नखलों आचार-सम्बन्धी रसिकता, और अनुभवों से आभूषित हैं । नवीन दशायें उसके चारों ओर बुद्धयात्मक शक्तियों पर प्रभाव डाल कर उसमें सुधार की दशा उत्पन्न कर देती हैं । अपनी इच्छाओं के प्रतिकूल और अज्ञात रीति से उसकी रीति व प्रकृतियों में परिवर्तन आरम्भ हो जाते हैं और ठीक वैसेही जैसे किसीका बोल-चाल नवीन मनुष्यों में रह कर बदल जाय । वह बुद्धयात्मक अभ्यासों में वैसे ही उत्साह से स्वाद उठाने लगता है जैसे कोई अंग्रेज़ पनीर और आयलैंण्ड की मछली से चाव बढ़ावे; सम्भव है कि अपरिचित विचारों की विरोधिता उसे मलिन बना दे परन्तु इससे भी उसके अभि-

मान के जड़का नाश होगा यहां तक कि जब वह भारतवर्ष लौट आयेगा तो वह अपने देश-वासियों की स्वयं प्रशंसा का अधिकतर चाहनेवाला न होगा उसके इंग्लिस्तान में निवास करने से इस प्रकार का प्रभाव उसपर अवश्य होगा यदि न हुआ तो उसका यह अर्थ है कि लोगों के स्वभावों, रीतियों और बुद्धि व मस्तिष्क पर सामाजिक जातियों का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता ।

परन्तु हम यहां दो जीते-जागते उदाहरण उन प्रभावों के उपस्थित करना चाहते हैं जो भारतीय विद्यार्थी पर उसके नवीन समाचार आगे पीछे डाला करते हैं सब से प्रथम तो गुरुओं का आचारसम्बन्धी प्रभाव हुआ करता है उस क़फ-आज़म न्यूमन ने अपने प्रसिद्ध उपदेश "निज प्रभाव अर्थात् सच्ची प्रसिद्धता के द्वाराओं" में यह वर्णन किया है कि किस प्रकार लोग पुस्तकों व उपदेशोंकी अपेक्षा गुरु के अनुकरण से अधिक प्रभावित हो जाते हैं इसलिये कि उनके नेत्रों के सम्मुख चलता फिरता वह मनुष्य विद्यमान रहता है जो उनके प्रेम व प्रतिष्ठा का अधिकारी है अर्थात् वह निज प्रभाव गुरु का है जो हमारे पाठशालाओं से लुप्त है और जो न केवल प्रत्येक अंग्रेज़ीकालिज में फैला हुआ दृष्टि आता है वरन अंग्रेज़ युवकों की शिक्षा व अभ्यास का एक बड़ा भाग भी है मेरा विचार है कि भारतवर्ष में

हम यह बात अधिक समय तक न प्राप्तकर सकेंगे । योग्य गुरु यद्यपि अबतक कम प्राप्त हैं परन्तु यदि व्यय सहन करने पर उद्यत हों तो एकत्र होना सम्भव है परन्तु ऐसे गुरु जो अपने शिष्यों की आशाओं और चित्तवृत्तियों के साथ सहानुभूति करें उनके विश्वास को प्राप्त करके उनके हार्दिक भावों को पढ़कर उनपर अपने प्रभाव का चलता जादू कर सकें । वे गुरु जो अपने शिष्यों की भलाई ही के हेतु अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं केवल इसलिये कि उनके शिष्य भी पराई भलाई के हेतु जीवित रहना सीख जायं । वह गुरु, जो अपने शिष्यों के दुःखों पर शोकित और उनकी प्रसन्नता पर प्रसन्न हो, ऐसा मणि है जो हर प्रकार के युवक की शिक्षा के लिये प्रयोजनीय है और इस देश में सर्वथा कम प्राप्त और लुप्त है । जिसका कारण प्रत्यक्ष और प्रकाशित है । भारतीय गुरु और वह भी जिसको अपने उद्यम में विशेष अभ्यास प्राप्त है शिक्षारूपी यन्त्र की एक पहिया है जो स्वयं देशीप्रबन्ध रूपी यन्त्र का एक भाग है और वे शक्तियां जो राज्य के अन्य मुहकमों में भारतीय सरकारी नौकरों की स्वतन्त्रता को दबा देती हैं गुरु पर भी अपना प्रभाव डालती हैं । उसे मुहकमे के कठिन नियमों का प्रतिपालन भी करना होता है और वह अपने शिष्य के किसी ऐसे चित्तवेग के साहस को नहीं बढ़ा सकता जो उसके

बड़े अफ़सर के प्रतिकूल हो बरन उसका ध्यान हर समय इस पर लगा रहता है कि स्कूल के परिणाम पर उन्नति निर्भर है। अंग्रेज़ी गुरु भी तो शासक-दल के ही एक अंश हैं। मानुषी प्रकृति से ऐसी आशा रखना अनुचित है कि वे उस योरपीय समाज के प्रतिकूल होकर रहें जो उनको चारों ओर से घेरे हुए है इसलिये कि यदि अध्यापक अपना वैज्ञानिक प्रभाव विद्यार्थी पर डालना चाहें तो उचित है कि वे अपना जीवन अपने सर्वसाधारण देश-वासियों से सर्वथा पृथक् बनाकर रक्खें। उनको भारतवासियों के समान ही रहना चाहिये उन्हें संतोष, परिश्रम, और दया का आचरण करना उनके साथ स्वतन्त्रता से मिलना-जुलना और अपने प्रेम और कृपा के छोटे २ कार्य्यों से यह ज्ञान करादेना भी आवश्यक है कि ऐंग्लो इण्डियन सिविलियन व्यापारी अथवा सिपाही भारतवासी के लिये चाहे कुछ भी विचार क्यों न रक्खें परन्तु कम से कम उन्हें उनकी भलाई का सच्चा ध्यान है और यह कि कम से कम उनके घर में वंश अथवा यूथ के विरोध मैत्रिक-समाज के हेल-मेल में किसी प्रकार का विद्रोह उत्पन्न नहीं कर सकते। परन्तु इस देश में भ्रमण-वेग और अंग्रेज़ी जाति का अपनपो इतनी प्रबलता के साथ है कि चाहे कितना ही उत्तमहृदय का अध्यापक क्यों न हो वह थोड़ेही समय के पश्चात् इस प्रभाव से प्रभावित होजाता

है उसके स्वभाव में परिवर्तन की स्थिति हो जाती है उसके हृदय की उत्तमता भूतकाल के कथा के समान हो जाती है और यह कहावत कि "रङ्गरेज़ के हाथ उसी रंग से रंग जाते हैं जिसमें वह हाथ डाले" उसपर तुलने लगती है। अत: परिणाम यह ही नहीं होता कि उसे हानि पहुँचे वरन उसके शिष्यों की श्रेणी की श्रेणी को हानि पहुँच जाती है। ऐसी दशा में वह महाशय जो नव-युवकों को इंग्लिस्तान भेज कर शिक्षा दिलाने के बड़प्पन को नहीं जानते ध्यान पूर्वक देखें कि यह हानि कैसी भारी हानि है और ऐसी हानि से वह भारतीय नव-युवक बचा रहता है जो सौभाग्यवश अपने अध्यापकों और प्रोफ़ेसरों के निज प्रभाव में रह कर किसी अंग्रेज़ी कालिज में शिक्षा व अभ्यास प्राप्त करता है। एक अध्यापक के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि उसने अपने समय के सर्व देश-वासियों को विद्या व सत्यता के प्रेम से भर दिया था और यह वह बड़ा कर्तव्य है कि जो वास्तव में प्रत्येक उत्तम अध्यापक को पूर्ण करना चाहिये और इस प्रकार के अध्यापकों की अंग्रेज़ी पाठशालाओं में कोई कमी नहीं है। भारतीय नव-युवकों को विशेषकर अपने अध्यापकों का उत्तम निजी उदाहरण आवश्यक है इसलिये कि वह उसे न अपनी जन्मभूमि और न अपने समाज में पाता है और न विना ऐसे प्रभाव के उसका

जीवन ऐसे देश में कुछ तुलना खाता है जहां पर प्रत्येक नव-युवक व्यक्ति के पग २ पर फंदे लगे हुए हैं और काम इच्छाओं व सुखरूपी प्रवल नदी में उसकी कोमल आचार सम्बन्धी नींव का टूट फूट जाना सम्भव है ।

अंग्रेज़ी कालिजों में भारतीय नव-युवकों के पढ़ाने से यदि एक यही लाभ जान पड़ता तो भी ऐसा अनुभव कर देखना उचित होता परन्तु इंग्लिस्तान की यूनिवर्सिटियों का जीवन उनकेलिये बहुत से अन्य भावों से भी लाभकारी है । सब से प्रथम तो उन्हें अतिकठिन आचारसम्बन्धी शिक्षा मिलती है जो इस देश में सर्वथा लुप्त है । कालिज के घण्टे समाप्त होने के पश्चात् वहां विद्यार्थी स्वतन्त्र नहीं हो जाता कि जो चाहे करे इसलिये कि उसे कुछ नियमों को प्रतिपालन करना होता है और उसकेलिये कर्तव्य है कि एक विशेष रीति से रहे सहे ।

अध्यापक की चौकसी कमरे के भीतर ही समाप्त नहीं हो जाती और यूनिवर्सिटी के सर्व-जीवन का उत्तम प्रभाव जिसका कि वह स्वयं एक भाग बन जाता है विद्यार्थी में जवाबदेही का एक विशेष विचार ऐसा उत्पन्न कर देती है कि जिसके कारण उसे सदा इस बात का विचार रहता है कि उसके किसी कर्म से उसके पाठशाला को बट्टा न लगने पावे । दूसरे उसे मैत्रिक भावसे अंग्रेज़ नव-युवकों की श्रेष्ठ-

तम श्रेणी से मिलने का अवसर मिलता है और उसका प्रभाव उसके मस्तिष्क व रीतियों पर भिन्न प्रकार से पड़ता है। 'मिस्टर वेजहट' ने उनमें से कुछ प्रभावों को भली विधि वर्णन किया है 'आक्सफोर्ड' और 'कैम्वृज' के वैज्ञानिक प्रवन्ध का प्रमाण देते हुये वह इस प्रकार वर्णन करते हैं।

"नव-युवकों के लिये इससे वढ़कर और कोई बात नहीं हो सकती कि वे नव-युवकों ही की सोसाइटी (संगति) में रहें। यह समय मित्रता करने का होता है। अतएव उनको हर प्रकार का अवसर और हर प्रकार की साहस-वृद्धि इस विषय में करनी चाहिये स्कूल के समय की मित्रता वचपन का भाव रक्खा करती है "पश्चात् के जीवन" में बहुत ही कम मित्रता उत्पन्न हुआ करती है इसलिये ज्ञात हुआ कि वचपनही में गहरे और बुद्धिसम्वन्धी मैत्रियों के चिन्ह हमारे हृदयों पर चिन्हित हुआ करते हैं यदि उनमें किसी प्रकार की आश्चर्य-जनक कहानी का प्रवेश भी हो तो फिर यह ऐसी ही अनोखी कहानी होगी जिसको नाश कर देना अथवा भूलना बहुत कम को भावेगा "पादड़ी और अध्यापक" जो कुछ भी नव-युवकों को पढ़ायें, सिखायें वह उससे बहुत कम होगा जो नव-युवक परस्पर एक दूसरे को सिखा देते हैं। यह सत्य कहा गया है कि स्कूल मनुष्य ने स्थापित किया परन्तु खेलने का मैदान ईश्वरी है। मनुष्य को बहुत

सी बातें सिखानेवाले घोड़े हैं गोलियां हैं और बालकों की श्रेणी है जब आप के सम्मुख दस बीस पचास बालक बैठते हैं लड़ते हैं एक २ को लात मारता है और फिर सामना की मार खाता है तो उससे जो शिक्षा मिलती है वह पुस्तकों से नहीं मिलती अतः नव-युवकों की दशा में मूलशक्ति न तो अध्यापकों से न व्याख्यानों से और न पुस्तकों के मुखस्थ करने से प्राप्त होती है बरन 'वर्ड्स वर्थ' और 'शैली' के इतिहासों में मिलती है उन पुस्तकों में जो इसलिय पढ़ते हैं कि वे सबको भाती हैं। अथवा उन बातों में जिन में सब का मन लगता है या वायुसेवन क साथ २ वादानुवाद करने में। बात-चीत में मीठे और कड़ुवे शब्दों के प्रयोग होने में। विचारों के पारस्परिक झगड़े से अर्थात् नवीन और गर्म विचारों का उसी प्रकार के विचारों से मेल होने में। और हंसी ठट्ठा इत्यादि इत्यादि में विद्या प्राप्त होती है इसलिये कि वे मस्तिष्क के प्राकृतिक व स्वतन्त्र प्रयोग से उत्पन्न होते हैं कालिज से बाहर नहीं मिलते इन "विचारों का पारस्परिक मेल" भारतीय नव-युवकों के लिये लाभकारी होता है इसलिये कि यह वह परमाणु है जो हमारे कालिजों और समाजों में नाममात्र को भी नहीं पाया जाता।

परन्तु गुण केवल इतनेही नहीं और भी हैं। अंग्रेज

और भारतीय नव-युवकों का अधिक समय तक मिल-जुल कर मैत्रिक भाव से रहना अपने स्थान में बहुत ही सार्थक है इसलिये कि दोनों एक दूसरे को पहिचानते और एक दूसरे को रुचते हैं पारस्परिक दोष को छिपाते और एक दूसरे के गुणों को स्वीकार करने लगते हैं। एक भारतीय नव-युवक के मस्तिष्क पर ऐंग्लो इंडियन कठिनता का कड़ुवा प्रभाव उस समय पड़ने की अपेक्षा अंग्रेज़ नव-युवकों की भलेमान्सी आचार और पुरुषार्थ का सवाया प्रभाव पड़ता है। दूसरी ओर अंग्रेज़ नव-युवक इस हेतु कि उनपर प्रभुत्व व शासन का प्रेत उस समय तक सवार नहीं होता यही जानते हैं कि हर मनुष्य भलामानुस ही है चाहे गोरा हो अथवा काला बहुत सी प्रशंसनीय बातें अपने भारतीय सहपाठी में पाते हैं जैसे प्रेममय और दयालु स्वभाव, गम्भीर, प्रसन्नचित्त, कृतज्ञ, स्वभाव। वंश व रङ्ग का अन्तर क्रीकट के मैदान और पाठ के कमरे में लुप्त होजाता है और इस प्रकार के मित्रभाव उत्पन्न होजाते हैं जो न केवल पक्षों के लिये मान व प्रसन्नता के कारण होते हैं वरन उनके द्वारा अज्ञात भाव से मित्रता, दयालुता का सम्बन्ध भारतवर्ष और ईंग्लिस्तान के मध्य दृढ़तर होजाता है। वे अंग्रेज़ जिनके साथ हमें सहपाठी बनने का अवसर मिल चुका है जिनके साथ हम 'कीम' व 'आईसीस' नदियों में नौकायें खे

चुके हैं और बहुत दिनों तक घराटों प्रेम मित्रता की संगति रही है चाहे वे कहीं जायं और किसी ही पद पर क्यों न नियुक्त होजायं सदा हमारी ओर उत्तम विचार रक्खेंगे और अपने देश-वासियों के हृदयों से अशुद्ध विचार जो हमारे देश-वासियों के सम्बन्ध में हों दूर करते रहेंगे। उसके साथ ही हमारे लिये यह भी आवश्यक है कि हम अंग्रेज़ों से भली भांति स्वतन्त्र होकर और खुलकर मिलें जिसमें हमारे हृदयों से वंशसम्बन्धी नीचता और यात्रा की घृणा का विचार जाता रहे। और वह कादरों की सी घबराहट जाती रहे जो श्रेष्ठतम भारत-वासियों में भी अंग्रेज़ों से मिलते समय व्यर्थ के लिये होजातीहै और उन आशङ्काओं बिरानपन को अपने हृदयों से दूर करदें जो अंग्रेज़ों के उत्तम स्वभाव के सम्बन्ध में हमें होजाते हैं। मुझे तो यही विश्वास है कि ऐसे भारत-वासी बहुत कम हैं जिन्हें इंग्लिस्तान में यूनिवर्सिटीय-जीवन व्यतीत करने का अवसर न मिला हो और तब भी वे अंग्रेज़ों के स्वभाव व रहन-सहन को भली भांति समझते बूझते हों और बिना प्रकाश अपने अभिमान की अन्तिम अवस्था के वे अंग्रेज़ों के सामने अपना मान बनाये रख सकते हों। निजसम्बन्धी मेल-मिलाप शताब्दियों के भय को नाश करता है और हमारी शासक जाति के साथ जो सम्बन्ध हों उनमें पारिवारिक मनोवेग

स्थापित करके राजनैतिक जीवन-चक्र में मिठाई व स्वाद उत्पन्न कर देता है ।

अब ऐसा कौन मनुष्य हो सकता है जो इस बात से 'नहीं' करे कि इन लाभों पर बड़े से बड़ा बड़प्पन भी अलाभ-कारी नहीं है । वे कौन लाभ हैं जो भारतीय नव-युवकों को इंग्लिस्तान के निवास से प्राप्त होने सम्भव हैं । वे ये हैं कि उनको उत्तम प्रकार की शिक्षायें मिलेंगी ।

वैज्ञानिक व्यवसायों और सरकारी नौकरी के हेतु विशेष शिक्षा हाथ आयेगी । जीवन के नवीन काल और उसकी अनेकों प्रेरणाओं का विस्तृत अनुभव हो जायगा इंग्लिस्तान के सामाजिक जीवन के नाना प्रकार के प्रभावों से उनके स्वभाव व रहन-सहन संगठित होंगे । अंग्रेज़ों से मिलने-जुलने और उनके साथ मित्रता करने के बहुत से अवसर मिलेंगे । हमारे स्वभावों व चित्तवृत्तियों को नवीन विचार ग्रहण करने और तीव्र और व्याकुल चित्तवालों के साथ रहने-सहने से बल बढ़ेगा । ये वे लाभ हैं जिनसे दृढ़ और वास्तविक प्रभाव हमारी भावी उन्नति पर पड़ेगा । अब यह प्रश्न उठता है कि यथार्थ में ये लाभ हमें प्राप्त भी होते हैं या नहीं उसका स्पष्ट उत्तर वे महाशय भी देने में देरी लगाते हैं जो विदेश-यात्रा के सहायक और नव-युवकों को इंग्लिस्तान भेजने में सहमत हैं ।

उनका कथन है कि "हां शिक्षा व अभ्यास के विचार से इंग्लिस्तान जाना है तो अच्छा परन्तु हमारे नव-युवक वहां जाकर कुछ भी नहीं करते बरन सर्वथा निकम्मे होजाते हैं । अंग्रेजों के प्रत्यक्ष रहन-सहन रीति-भांतियों को ग्रहण कर लेते हैं और जब लौटकर आते हैं तो साधारण न्यायी प्रतीत होते हैं । और वे अपने देश-वासियों को घृणा की दृष्टि स अवलोकन करना आरम्भ कर देते हैं और अपने समाज की कुछ भी सेवा नहीं करते । अबतक तो यह अनुभव अफलीभूत ही सिद्ध हुआ है अतएव प्रत्येक माता-पिता को भली भांति सोच-विचार कर अपने बेटे को विलायत भेजना चाहिये" ।

मैं मानने पर प्रस्तुत हूं कि इस सदाचारी निर्णय में सत्यता की गन्ध अवश्य है तथापि यह कहा जा सकता है कि इस विषय का अनुभव पूर्णरीति से नहीं हुआ है और जितना अनुभव हुआ है उसमें अभी असफलता नहीं हुई है । यथार्थ परिणाम के साथ जो असन्तुष्टता पाई जाती है उसका मूल कारण यह है कि स्वयं हमारी इच्छायें बहुत बढ़ी हुई हैं । पल भर के लिये उन दशाओं पर भी तो विचार कीजिये जिनमें साधारणतः भारतीय नव-युवक इंग्लिस्तान आया करते हैं । बहुधा उनके माता-पिता अशिक्षित और बहुतही कम शिक्षित हुआ करते हैं वे अधूरी शिक्षा पाकर

विलायत जाते हैं। उनके माता-पिता न तो उनकी शिक्षा व अभ्यास में उत्तम क्रम उत्पन्न कर सकते हैं और न यह निश्चित कर सकते हैं कि उनको किस उद्यम के लिये शिक्षा दिलानी चाहिये। अतएव यह कहना अनुचित नहीं है कि इन नव-युवकों से असम्भव से सम्भव कर दिखाने की इच्छा की जाती है। उनको परिपूर्ण यूनिवर्सिटी की शिक्षा तो मिली नहीं परन्तु उनसे यह आशा की जाती है कि वे सफलता के साथ अपने हेतु स्वयं ही शिक्षा देलें और विना अनुभव व मार्गदर्शिता वे कोई उद्यम अपने लिये निर्वाचित कर लें। इन सबके अतिरिक्त उनसे यह भी आशा की जाती है कि अधिक द्रव्य व परिपूर्ण स्वतन्त्रता के होते हुये भी वे सर्व इच्छाओं, उच्च स्वभावों और ललचानेवाली वस्तुओं पर विजय पाकर उपरोक्त इच्छाओं को सफलता के साथ पूर्ण कर दिखावें। इसका भावी परिणाम यह है कि उनकी निर्बल नौका टूट-फूट कर बराबर हो जाती है।

तरङ्गे उनको वहा लेजाती हैं और उनको इच्छानुसार बन्दर तक पहुंचने का सौभाग्य नहीं प्राप्त होता। योरपीय जीवन का बाहरी सुन्दर स्वरूप अधिक रोचक जान पड़ता है और वह नव-युवक मनुष्य जिसको अपने घर से अन-गिन्ती रुपया बराबर मिलने का विश्वास होता है 'कैम्ब्रृज' अथवा 'आक्स-फोर्ड' जाने की चिन्ता इसलिये नहीं करता

कि उसे विद्या की अभिलाषा नहीं होती और दुर्भाग्यवश वहां कोई भी मनुष्य उपस्थित नहीं होता जो इस इच्छा को उसमें उत्पन्न करे। वह लंदन में रह जाता है और किसी आनर-आफ़-कोर्टस में सम्मिलित होजाता है और किसी गृहसम्बन्धी-पाठशाला में सम्मिलित होकर किसी न किसी उपाय से परीक्षोत्तीर्ण हो जाता है। इस प्रकार अपने का नाश करके वह जब वैरिस्टर बनकर भारतवर्ष में लौटकर आता है तो उसके देश-वासी उसको देखकर प्रसन्न होते हैं और उसके बलपर अभिमान किया करते हैं। यह प्रत्यक्ष है कि ऐसी दशा में वह और करही क्या सकता था। उसकी दशा ठीक उस अंग्रेजसमान है जो निकटतम दश-वर्ष का हो और जो सहस्रों रुपये लेकर 'पैरिस' भेजा जाय जहां न उसका कोई मित्र हो न सहायक हर प्रकार की स्वतन्त्रता भी प्राप्त हो जो चाहे करे और जिसप्रकार चाहे धन व्यय कर इस अवस्था में उसकी जो दशा होगी वह प्रत्यक्ष है यौवन की इच्छायें प्रेरणायें उसपर विजय प्राप्त कर लेंगी सुख-प्रिय समाज की झलक-पलक उसमें वही निकृष्ट परिणामवाली इच्छायें उत्पन्न कर देगी और मानुषी प्रकृति की निर्बलता उसकी वही दशा कर देगी जो सर्व साधारण मनुष्यों की ऐसे अवसर पर हो जाया करती है। हम सबसे प्रथम यही कल्पना क्यों करलें कि भारतीय नव-युवकों के

लिये सामुद्रिक व विदेश-यात्रा भलाई का कारण है और किसी प्रकार के और बन्धन की आवश्यकता नहीं मानो समुद्र पार करने के साथही समुद्र कुछ जादू उत्पन्न करके उसे अत्यन्त धनवान् और अनोखा व्यक्ति बना दे और जब अन्त में वह हमारी इच्छायें पूर्ण नहीं कर सकता तो फिर हम उसे और उस रहन-सहन को बुरा-भला कहने लगते हैं जिसके विषय में यह कल्पना कर लिया जाता है कि वह उसके नाश का कारण हुआ ।

परन्तु ऐसा कर्म सर्वथा अनुचित है इसलिये कि वह बेचारा तो मानो उन दशाओं का जन्मधारी है जो उसके चारों ओर हैं और जिनके वश उसके माता-पिता ने जान बूझ कर करदिया था और अब जबकि कांटों और झांखरों से उन्हें अंगूर व अंजीर हाथ नहीं आते तो उन्हें हताश होनाभी वृथा है ।

तथापि मैं तो यही कहूंगा कि सर्व दोष व हानियों के होते हुये भी यह अनुभव सर्वथा अकार्थ सिद्ध नहीं हुआ है । वैज्ञानिक व शिक्षित माता-पिताने इस अनुभव से लाभ ही उठाया है उन्होंने अपने बच्चों की शिक्षाकी चौकसी रखने के अतिरिक्त उनकी चौकसी भली भांति विलायत में भी प्राप्त करली है । उन्होंने इस बात का सर्वथा विचार रक्खा कि उनके बालकों को अच्छी शिक्षा मिले । वे

अच्छे समाज में रहें अच्छी मित्रता स्थापित करें और अपने चित्तवेगानुसार अपने उद्यम का भी निर्वाचन करें। ऐसे नव-युवक सिविलियन, डाक्टर इंजीनियर तथा दर्शन-शास्त्र और साइंस में निपुण होकर लौट आते हैं।

उन्होंने अपने जीवन की भिन्न २ घटनाओं में योग्यता व नाम प्राप्त किया है और इस प्रकार के लोग उत्पन्न किये हैं जैसे सैयद महमूद, रोमेश चन्द्र दत्त, सुरेन्द्रनाथ बनरजी, डब्लू सी. बनर्जी, स्वर्गवासी डाक्टर बहादुरजी और प्रसिद्ध गणित-विद्वान् परिंजिपे, ऐसे नव-युवकों के झुंड में भी जिन को माता-पिता के वैज्ञानिक उपदेश व सहायता का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता और जिनको अपने ही बल का आश्रय लेना पड़ता है कभी २ ऐसे मनुष्य निकल आया करते हैं जो सर्व रमणीक वस्तुओं पर विजयी होते हैं और शिक्षाभिलाषा जो उनमें स्वाभाविक होती है विना किसी बाहरी सहारे के स्वयं ही प्रकट हो जाती है। वे अपने स्वाभाविक गुण और योरपीय सभ्यता के बल से सर्वोत्तम योग्यता प्राप्त कर लेते हैं और कुछही वर्ष इंग्लिस्तान का रहना उनके जीवनको विशेष रंग व चिकनाई देताहै। नवीन समय की शिक्षाका प्राणधारी होना और भारत-वासियों का उसकी ओर आकर्षित होना इसीसे प्रकट है कि योर-पीय जीवन के भय और उन सर्व अवसरों के होते हुये भी

जो विद्या प्राप्त और रीति व स्वभाव के प्रतिकूल स्थापित हुये हैं यही नहीं बरन कुछ नव-युवकों के हाथ में द्रव्य और मस्तिष्कों में मदिरा और हृदयों में यौवन की तरङ्गें होती हैं तथापि अनुभव अफलीभूत नहीं हुआ और बीसों भारतीय नव-युवक इंग्लिस्तान जाते और उनमें से कोई २ फलीभूत भी होकर लौटते हैं । इसमें कुछ संदेह नहीं है कि रुपया बहुत कुछ व्यर्थ जाता है और अनुराग भरे माता-पिता बिना समझे बूझे अपने बच्चों को इंग्लिस्तान भेज देते हैं और भेजते समय इसका भी विचार नहीं करते कि उन्हें वहां जाकर क्या करना है और बहुतेरे नव-युवक नालायक़ निकलते हैं और उनके माता-पिता का साहस भी टूट जाता है परन्तु देखा जाय तो एक सीमा तक ऐसा होना भी आवश्यक है । प्राकृतिक इस प्रकार की स्थिति हुई है कि अन्तिम पद के शिखर पर पहुँचते २ संख्या में कमी होजाय यथा "पचास बीजों में से एकही फलता फूलता है" बहुतेरे श्रेष्ठ जीवन नाश होकरके—आशायें मिट्टी में मिलाकर, आपत्तियों के पीछे पड़कर, और बहुतेरे मानुषी शक्तियां खोकर उन्नति के शिखर पर नहीं पहुचते हैं । सौभाग्यवश मानुषीवंश में कोई बड़ा मनुष्य उत्पन्न होजाता है जो प्राकृत की नष्ट की हुई कार्यवाहियों से बचकर अपनी विशेषता की परछाईं उस चक्र पर कि जिसमें उसने ज़न्म लिया डाल देता है

और करोड़ों मनुष्यों के लिये मत व धर्म स्थापित कर जाता है। मेरे विचार में चाहे बीसियों नव-युवक सर्वथा नाश को प्राप्त हो जायँ तो भी इस प्रेरणा की सहायता कि नव-युवकों को विलायत भेजा जाय करनी चाहिये यदि दश वर्ष के पश्चात् भी एक मनुष्य असाधारण योग्यता का निकल आया करे इसलिये कि यही एक मनुष्य करोड़ों हृदयों में उमङ्ग उत्पन्न करके बहुतेरे ऐसे विघ्नों को मिटा देगा कि जो उसकी जातीय-उन्नति में बाधक हैं। वर्तमान समय में जो परिश्रम और दुःख उत्पन्न हो रहे हैं उस पर भी शोक करता हूं परन्तु इससे मेरा साहस नहीं टूटता इसलिये कि मुझे विश्वास है कि हमारी वर्तमान चेष्टायें जिनके व्यर्थ होने की बहुत कुछ सम्भावना है एक दिन हमारे भविष्य को आनन्द और सुख से परिपूर्ण कर देंगी।

तथापि यह प्रश्न अत्यन्त ही कठिन है कि वह कार्यवाही जो शोक व बरबादी से भरी हुई और जिसके द्वारा हम अब पश्चिमी सभ्यता प्राप्त करना चाहते हैं बड़ी होगी अथवा छोटी? एक विद्वान् व ठीक रोकनेवाली जाति के भाव से न हम अवसरों पर भरोसा कर सकते हैं और न अपनी सारी जवाबदही परमात्मा पर रख सकते हैं। बच्चों को इंग्लिस्तान भेजते समय कुछ बातें बहुत ही विचारणीय हुआ करती हैं। सबसे प्रथम प्रत्येक भारत-वासी माता-पिता को यह देखना

चाहिये कि उसके पास इतना धन भी है कि वह अपने पुत्र को विलायत में उचित शिक्षा दिलासके । यदि उसके पास रुपये न हों तो मैं निःशङ्क हो यही कहूंगा कि वह इस अभिलाषा का विचार ही छोड़ दे इसलिये कि प्रत्येक विदेशी जो इंग्लिस्तान में रहकर लाभ उठाना चाहे उसके लिये उचित है कि वह बहुत कुछ व्यय करने पर प्रस्तुत हो । दूसरे यदि पिता इस योग्य हों तो यह भी निश्चय करदें कि बालक को शिक्षा-विचार से कितने समय तक रहना चाहिये और यदि वह स्वयं ऐसा न कर सके तो इंग्लिस्तान ही के किसी योग्य पुरुष से यह बात निश्चित करालें भाव यह है कि बालक को अपनी शिक्षा के निर्वाचन सम्बन्ध में बहुत थोड़ी स्वतन्त्रता रहनी चाहिये इसलिये कि उसका निर्वाचन ९० नब्बे प्रतिसैकड़ा अशुद्ध ही होगा । इस देश में स्वयं उसका बहुत ही उत्तम उदाहरण मिलता है अर्थात् हमारे नव-युवकों को जब कभी स्वतन्त्रता मिलजाती है तो वह साइंस के स्थान में अपने बी. ए. की परीक्षाओं में पढ़ने का विषय ले लेते हैं । जब यह दशा अन्त तक पहुँचनेवालों की हो तो ऐसे इंग्लिस्तान जानेवाले बालकोंसे और क्या आशा की जा सकती है जो बेचारे अपना देश छोड़ते समय कठिनता से मैट्रिक्यूलेशन भी पास होते हैं । तीसरे यह सिद्धान्त भी अत्यन्त कठिन है कि भारतीय विद्यार्थी को किस अवस्था

में इंग्लिस्तान भेजना चाहिये या तो वह निपट बालकपनही में जाय या अपना बालकपन समाप्त करते समय; शिक्षा के मध्य में या युवावस्था में कालिज की शिक्षा समाप्त करने पर जा सकता है इन सर्व अवस्थाओं में लाभ भी हैं और हानियां भी। बालकपन का समय निस्संदेह बहुतही प्रभावशाली हुआ करता है और जो मनुष्य इस अवस्था से इंग्लिस्तान में शिक्षा प्राप्त करेगा वह निस्संदेह अंग्रेज़ी मनोवेग और प्रकृति लेकर लौटेगा परन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि उसकी जातीयता नाश होचुकी होगी और वह सर्वथा अंग्रेज़ वन गया होगा। सम्भव है कि कोई महाशय इसे उत्तम समझें परन्तु मैं तो निकृष्टही समझता हूं। मेरा तो विचार यह है कि ऐसा मनुष्य जो न अपने माता पिता से अभिज्ञ हो न अपने भाई बहनों से प्रेम करता हो जिसके प्रारम्भिक विचार विदेशी विचारों और दृश्यों का प्रतिबिम्ब हों और जो अपने देश के रहन-सहन को उस समय देखे जब कि उसकी सर्व बुद्धि और आचारिक प्रकृति को अन्यजाति के रहन-सहन ने बदल दिया हो तो वह चाहे कैसाही कुछ क्यों न गुणज्ञ हो अपने देश व जाति का विचार ही न करेगा और न उनके उस जीवनको जो साधारण निर्बल विश्वासों और उद्देश्यों पर निर्भर है समझ ही सकेगा उसके चित्त की स्थिरता और कठिन राहें उसे

इस योग्यही न रक्खेंगी कि वह कामों को पूर्ण कर सकें जो वर्तमान परिवर्तनशील समय में कर डालने चाहियें । वे काम क्या हैं यह कि प्राचीन व नवीन जातियों की पारस्परिक युद्धपरीक्षा के होते भी घावों के भरने के मेल और परीक्षा-सम्बन्धी तीव्रताओं से असमञ्जस न किया जावे यदि पन्द्रह सोलह वर्ष का बालक विलायत जाय तो उसे पर्याप्त समय अपने शिक्षा में व्यय करने को मिलता है और यद्यपि उसका स्वभाव भावस्वीकृत होता है तथापि उसमें यह भी योग्यता होती है कि जन्मभूमि के प्रभावों को स्थिर रखसके और यह भय उसकी ओर से नहीं होता कि अपनी जातीयता खो देगा परन्तु यह अवस्था वह अवस्था है कि जिसमें यौवनका प्रारम्भ मस्तिष्कको बिगाड़ देता है प्रकृति व स्वभाव बनने आरम्भ होते हैं और उसी समय में यदि सीधी राह से किंचिन्मात्रभी दायें-बायें हट गये तो अभीष्टका सिद्ध होना असम्भव होजाता है । यदि कोई विद्यार्थी यहां से कालिज की शिक्षा समाप्त करके विलायत जाय तो वह निस्संदेह इंग्लिस्तान के जीवन और अभ्यास से लाभ उठाने के योग्य होता है और अपनी शिक्षा के उद्देश्य को निर्वाचित करने की भी उसमें योग्यता होती है परन्तु उसके साथ ही हमें स्मरण रखना चाहिये कि आयु की वृद्धि के संग मस्तिष्क में कठिनता भी उत्पन्न होजाती है और उसके विश्वास और

प्राकृत व स्वभाव परिपक्व होचुके हैं इसलिये उसकी आचार-सम्बंधी बातों में कुछ वृद्धि नहीं होती परन्तु उसका अर्थ यह नहीं कि किसी प्रकृति-विचारसे उसके स्वभाव व रीतियों पर कोई उत्तम भविष्य परिवर्तन उन दशाओं के प्रभाव से कि जो उसके आस पास में न हों नहीं होता परिवर्तन, उन्नति और बदलाई अवश्य होती है परन्तु उनमें वही गुण अधिक रहते हैं जो उसने अपने समाज और देश से प्राप्त किये हैं।

यद्यपि मैंने जीवन भर के लाभ व हानियों को वर्णन कर दिया है परन्तु मैं यह आवश्यक नहीं समझता कि यह भी बता दूं कि मेरे विचार में किस-किस आयु में बालक को विलायत भेजना चाहिये क्योंकि इस बात का निश्चित करना उसकी पूर्व दशाओं व पास, पड़ोस उसकी शिक्षा व प्राकृतिक-गुण और उसके जीवन-उद्देश्य पर जिसके लिये उसके माता-पिता और अध्यापक उसे उचित समझते हैं निर्भर है। यह कह देना बस समझता हूं कि प्रत्येक अवस्था क साथ विशेष २ बचाव व बन्धन उचित हैं और जितना कम आयु बालक होगा उतनीही अधिक उसकी आवश्यकता होगी इंग्लिस्तान जानेवाले विद्यार्थियों की एक बड़ी संख्या अपूर्ण शिक्षित सोलह और बीस वर्ष के मध्य अवस्थावाले साधारणतः होते हैं और भविष्यमें होते रहेंगे इसलिये कुछ

वह कार्य जिनका कि मैं ऊपर वर्णन कर चुका हूं विशष कठिनता रखते हैं कि जिनमें एक दो बातें और भी बढ़ाना चाहता हूं ।

सबसे अधिक कठिन बात यह है कि इन नव-युवकों को अंग्रेज़ीवंश में रख देना चाहिये और अंग्रेज़ मित्रों की चौकसी में उनकी शिक्षा होनी चाहिये जहां तक सम्भव हो उन्हें निवासस्थानों, होटलों और विद्यार्थियों के परस्पर रहने के जोखिमों और कष्टों से रक्षित रखना चाहिये । ऐसे उत्तम वंशों का जो भारतीय विद्यार्थी को अपने यहां ठहरा लें मिलना सहज नहीं हैं परन्तु इस कठिनता को अंग्रेज़ मित्रों का निजी प्रभाव सिद्ध कर सकता है सबसे बड़ी कठिनता भारतीय नव-युवक की शिक्षा की चौकसी है । भारतीय विद्यार्थी की चौकसी और शिक्षा-सम्बन्धी कार्यों में उनको सम्मति और सहायता देने के अभिप्राय से चौदह पन्द्रह वर्ष हुये लन्दन में नेशनल इंडियन ऐसोसिएशन एक कमेटी स्थापित हुई थी जो कदाचित् अब तक विद्यमान है । इस कमेटी का सबसे पहिला नियम यह था कि नव-युवक विद्यार्थी का सारा रुपया अपने अधिकार में कर ले और उसके व्यय में सुनियमता और रोक-थाम उत्पन्न करे इसलिये कि जिसके हाथ में द्रव्य है वह क्या कुछ नहीं कर सकता यदि विद्यार्थी को अपने रुपये पर अधि-

कार प्राप्त रहा तो फिर सब चौकसी व्यर्थ है । इस कमेटी को प्रारम्भिक समयमें जब मैं भी इसका सभासद था मैंने सदैव अच्छाही काम करते पाया और उसके गुणों का अनुमान इसीसे हो सकता है कि नव-युवकों का वह यूथ जो सब से प्रथम उसके शासनाधिकार में आया था उसने बहुत शीघ्र अपने माता पिता को बहला फुसलाकर इस कमेटी के अधिकार से छुटकारा ले लिया । भारतीय माता पिताओं ने इस कमेटी की सहायता से लाभ नहीं उठाया परन्तु यदि इंगलिस्तान से लौट आनेवाले विद्यार्थी की निष्फलता का यही क्रम लगा रहा तो फिर इस प्रकार की कमेटी का लाभ और आवश्यकता अधिक ज्ञात होने लगेगी ।

उद्यम का निर्वाचन भी अति कठिन बात है इसका रोना रोया जाता है कि क़ानूनी उद्यम में अधिक नहीं परन्तु रोने के अतिरिक्त हम और कुछ करते भी तो नहीं बरन यदि हमारा बालक क़ानूनी पाठशाला में भर्ती हो जाता है तो हम अतिही प्रसन्न होते हैं । ऐसे विद्यार्थी किसी न किसी प्रकार परीक्षोत्तीर्ण हो जाते हैं और ईबा पहिन कर अर्थात् बैरिस्टर बनकर लौट आते हैं परन्तु अपने उद्यम की कठिनता क सामना करने की उनमें सामर्थ्य नहीं होती । मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि इंगलिस्तान में क़ानून (न्याय) न पढ़ना चाहिये इसलिये कि किसी २

विद्यार्थी में विशेष योग्यता हुआ करती है बरन मेरा उद्देश्य यह है इसके अतिरिक्त और भी तो उद्यम हैं । इस देश में क़ानून (न्याय) उद्यमवालों से बढ़कर अच्छे डाक्टरों, इंजीनियरों और साइंस ज्ञाताओं की आवश्यकता है और हमको जातीय द्रव्य के प्राप्त करने और बढ़ाने के लिये ऐसे उद्यमवालों की आवश्यकता भी है इसलिये कि क़ानून (न्याय) ज्ञाता लोग कुछ मिलकर उस द्रव्य को नहीं बढ़ा सकते जितना कि एक इंजीनियर या साइंस ज्ञाता कर सकता है । परन्तु हमें यह आशा न करना चाहिये कि पन्द्रह सोलह वर्ष का बालक अपने सहपाठियों को ऐसा करते देख कर उस बहाव पर बहने से बिलग रह सकता है ।

यह तो थोड़ी सी वह बातें हैं जिन पर माता पिता और रक्षकों को विचार करना चाहिये परन्तु इस प्रकार की कुछ और कठिन बातें भी हैं जिनके सम्बन्ध में सूक्ष्म रीति से नव-युवकों से बात चीत करना चाहता हूं उन्हें यह हर समय ध्यान में रखना चाहिये कि शिक्षाविचार के अतिरिक्त विदेश-यात्रा के सिद्धान्त के और भी रूप हैं जिनके विचार से उन पर इंग्लिस्तान में वास करने के कारण विशेष प्रकार की जवाब-दही उनके शिर हो जाया करती हैं इसलिये उनकी शिक्षा और उनके अनुभवों के कारण समाज में उनको एक विशेष पद प्राप्त हो जाता है इस विषय के

अन्तिम पृष्ठों में इस प्रश्न पर मैं बहुतही सूक्ष्म वार्ता करूंगा।

मैं विदेश-यात्रा की चर्चा ऊपर कर चुका हूं विशेष कर उसके इस भाव पर जो विद्यार्थी और नव-युवक से सम्बन्ध रखता है । यह उस प्रेरणा का बड़ा भाग्य है जो नवीन कार्य-चक्र में नवीन शक्तियों की सहायता से सभ्यता व उन्नति की वृद्धि करा रही है इसलिये वह महाशय जो योग्य शिक्षा के अभिप्राय से या अन्य आवश्यकताओं से जाया करते हैं वह जन्मभूमि को लौट आकर एक बड़े कर्तव्य के भाव से अपनी जाति के सामाजिक-जीवन सुधारों में प्रवृत्तहों।

सामाजिक सुधार का सिद्धान्त अनेकों ओर आकर्षित है। और इसमें बहुत सी बड़ी २ जिरहें भी हैं परन्तु इस विषय में किंचित्मात्र भी संदेह नहीं कि अंग्रेज़ों की पारस्परिक प्रीति और आचारसम्बन्धी सहायता उतनीही आवश्यक है जितनी कि स्वयं भारतवासियों की सहायता और चेष्टायें। यह प्रकाशित है कि यदि अंग्रेज़ हमारे सामाजिक परिवर्तन की परवा नहीं करते और हमसे हिल-मिल कर रहना नहीं चाहते तो उसका कारण केवल वंश के पक्षपात हैं और कुछ पारस्परिक स्वभावों और प्रकृतियों से अभिज्ञता। भारतवर्ष में सम्भवतः भ्रमण के कारण कुछ समय तक पक्षपात स्थापित रक्खेंगे परन्तु इंग्लिस्तान में उसका दूर कर देना सम्भव है । यदि तीन ही अंग्रेज़ शुभाचरणी

भारतवासियों के साथ जिनकी विद्यारसिकता उत्तम और प्रकृतियां सज्जन हों बराबर मिला जुला करें तो वह उस जाति की प्रतिष्ठा करने लगेंगे जिसके वे सर्वाङ्ग हैं और यदि वे जीवन के साधारण कार्यों में हमें योग्य साथी समझने लगेंगे तो फिर वह सुधार के महान् कार्यों में पारस्परिक सहायता और सहानुभूति से कमी न करेंगे। भारतवर्ष के सम्बन्ध में योरपीय लोगों के मनोवेग में प्रोफ़ेसर मेक्स-मूलर इत्यादि ने पश्चिम और पूर्व के मध्यवंशी-सम्बन्ध का प्रकाश करके वहुत कुछ परिवर्तन उत्पन्न कर दिया है अब हम अंग्रेज़ों पर यह सिद्ध कर दें कि जैसा भारतवासियों को प्राय: प्रकाशित किया जाता है हम अर्ध असभ्य नहीं हैं हमारा प्राचीन रहन-सहन श्रेष्ठ-तम हो चुका है और आचार और बुद्धि में भी हम कम श्रेणी के मनुष्य नहीं हैं और यह स्मरण रखना चाहिये कि अंग्रेज़ लोग हमारी योग्यता का अनुमान उन महाशयों से लगायेंगे जो उनके सम्मुख पहुँचेंगे उस समय वह भारतीय व्यापारियों, कर्मचारियों और विद्यार्थियों को देखते हैं और उनहीं की योग्यता और प्रकृतियों, विद्यारसिकताओं और कर्मों से हमारे रहन-सहन का अनुमान करते हैं। उनका यह विचार कि जो लोग विलायत जाते हैं वह उच्च-श्रेणी के होते हैं ठीक है और यदि उन उच्च-श्रेणी के मनुष्यों के कर्तव्य व

विचारों के कारण उन्हें यह आशंका हो जाय कि उनका रहन-सहन कमतर है तो हमारे देश के साधारण मनुष्यों क विषय में तो उनका विचार और भी निकृष्ट होना चाहिये। इन्हीं कारणों स यह बात अति आवश्यक है कि जो लोग विलायत जायँ वह इस प्रतिष्टा व आचार-विचार क हों कि उनके विषय में इंगलिस्ताननिवासियों का विचार उत्तम हो सर्व देश के विषय में अच्छा या बुरा विचार मानो उन कुछ थोड़े मनुष्यों के हाथ में होता है चाहे वह उसको अच्छा कर दें चाहे बुरा ।

उन विचारों के भले या बुरे होने के उत्तराधिकारी यह मनुष्य होते हैं । किसी भारतवासी को यह न विचार करना चाहिये कि लन्दन या पेरिस में कोई इसे देखता तो है ही नहीं तो वह चाहे जिस प्रकार कार्य कर सकता है गृहस्वामी, सेवक और बेहरह जो उसको भोजन कराता है उसकी रीति भांतियों को अति विचार से देखते हैं और उन लोगों के जो इन महाशयों के विषय में विचार होजाते हैं वैसाही वह सर्व जाति के विषय में विचार करने लगते हैं । यदि अंग्रेज़ विचार करने लगें कि कोई २ भारत-वासी वंश और भाषा के लगाव के अतिरिक्त ऐसी बुद्धि व गुण भी रखते हैं जिन पर नवीन रहन-सहन मान करता है तो भारतवर्ष को क्या बरन इंग्लिस्तान को भी बहुत लाभ पहुंचेगा मेरे विचार में

यह दूरदर्शिता बहुत कठिन है इसलिये कि कर्मचारियों की दया और इच्छा-कारीसे प्रजाकी सदा उन्नति हुआ-की है।

जितनी यह बात कठिन है कि इंगलिस्तान में निवास करके भारत-वासियों को इंग्लैंडनिवासियों पर अपने भविष्य में अच्छा प्रभाव डालना चाहिये एक भारतवासी को उतनी ही यह बात भी कठिन है कि अपनी जन्मभूमि को लौट आकर उसे यह सिद्ध करना चाहिये कि वह इस योग्य है कि देश-वासी उसकी प्रतिष्ठा और उस पर विश्वास करें इसलिये कि अंतिम वर्णित उसीके उदाहरण से योरप-वासियों के रहन-सहन, उनकी विद्या और अनुभवों का अनुमान करेंगे और उसीके उदाहरण से जैसी कुछ भी हो प्रत्येक अवस्था में लोग अंग्रेज़ी सभ्यता व रहन-सहन के विषय में सम्मति ठहरायेंगे। मानुषीय कार्यों की अच्छाई व बुराई उसके फल से निकाल ली जाती है। सर्व साधारण नवीन विचारों को सदा संदेह की दृष्टि से देखते हैं और उनको नवीन बातों पर बहुत कम विश्वास है। बहुत सी नवीन बातें हठपूर्वक आवश्यकतानुसार ग्रहण कर ली जाती हैं और यह संदेह बराबर बने रहते हैं जब तक कि द्वित्व (खिरापन) अपने को लाभदायक सिद्ध नहीं कर देता है अर्थात् जब तक उसका परिणाम अच्छा सिद्ध नहीं हो जाता है ऐसा भारत-वासी जो अंग्रेज़ बनकर लौट आये

अंग्रेज़ों की बुरी वार्ता को ग्रहण करे और उत्तम बातों की परवा न करे अपने जातीय समाज की निन्दा करे तो उसकी बानगी वास्तवमें उस संदेह और घृणा में जो भारत-वासी नवीन रहन-सहन के साथ रखते हैं वृद्धि करेगा। यह सब की शिकायत है कि जो लोग विलायत हो आये हैं वह अपनी जातीय-विशेषता को त्याग देते हैं और अपनी सामाजिक बातों से सम्बन्ध नहीं रखते शिकायत ठीक भी है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि पन्द्रह बीस वर्ष पूर्व जो भारत-वासी विलायत होकर लौट आये हैं उन्होंने जो अंग्रेज़ी रीति, स्थिति, प्रकृति और फैशन विना सोचे विचारे इस देश में प्रयोग करना आरम्भ किया तो उसका प्रभाव हमारे देशवासियों पर बहुत बुरा पड़ा । अतिरिक्त इसके शिक्षावृद्धि ने भी हमें अपने धर्म और रहन-सहन के गुणों को भली-भांति समझने के योग्य बना दिया है तो हम विलायतकी बहुतसी बातों को अपने समाज के सामने अच्छा नहीं समझते। अतएव यदि यह इच्छा है कि इस प्रकारका भाव उत्पन्न न हो अर्थात् उन लोगों के विषय में जो विलायत से लौट आते हैं लोगों के विचार संदेहयुक्त न हों तो उचितहै कि वह अपने को वर्तमानसम्बन्धी रहन-सहन की सर्वोत्तम बानगी सिद्ध करके दिखलाये । जिससे अपनी रीतियों और कर्तव्यों से वह लोगों पर यह सिद्ध कर दें कि उनके संदेह

मिथ्या हैं और उनमें यह विचार उत्पन्न हो जाय कि योरप का जाना और वहां के लोगों की बहुत सी बातें उत्तम हैं और वह भी इस बात पर आकर्षित होजायँ कि अपने प्राचीन विचारों को नवीन विचारों से परिवर्तित करलें—यह जवाब-दही परमात्मा ने उनके लिये निश्चित की है । प्रत्येक भारत-वासी युवक को जो इंग्लिस्तान जाय यह ध्यान रखना चाहिये कि वह विद्यार्थी बनने के अतिरिक्त पूर्ण जाति बनने के कर्तव्य भी अपने आधीन रखता है वह नवीन रहन-सहन का ज्ञाता बनकर लौट आता है और अपने देश-वासियों को नवीन प्रकाश पहुँचायेगा यदि उसके उज्ज्वल विचार अँधियारे विचारों से बदल गये तो फिर जातीय भूल भटक का कोई आर-पार न होगा उसे प्रारम्भ ही से इस कर्तव्य को कठिन समझ कर एक दिन की भी देरी भरपूर पूर्ण करने की तैयारी में न करना चाहिये मैं उन लोगों से सहमत नहीं हूं जिनका यह विचार है कि शिक्षा-काल में नव-युवकों को विद्याप्राप्ति के अतिरिक्त और कुछ विचार न रखना चाहिये जब वह दुनियांदारी (संसार-सम्बन्धी) जीवन प्रारम्भ करे । मेरे विचार में युवा ही अवस्था का वह समय है जिसमें प्रत्येक अभीष्ट के सिद्ध होने की चेष्टा करनी चाहिये जो किसी विचार-शील नगर-निवासी का अंत तक पहुँचनेवाला जीवन हो सकता है । यह वह

समय होता है जब मस्तिष्क में गर्मी, आत्म-बल और सहानुभूति की अधिकता हुआ करती हैं और प्रेम व बल का सोता बड़ी तीव्रता से उबलता है । यदि ऐसे समय को भी सामाजिक सुधार में व्यतीत न किया गया तो फिर यह विश्वास करना चाहिये कि भविष्य की सर्व चेष्टायें और अनुभव इतने विश्वासनीय नहीं होसकते ।

बुढ़ापा समय में नवीन कर्तव्य, नवीन चिंतायें और नवीन व्याकुलता उठ खड़ी होती हैं और उस समय जातीय सुधार का विचार ही जाता रहता है ।

मनुष्य बड़ी सरलता से अन्य प्रेरणाओं और इच्छाओं का आखेट बन जाता है । संसार की शक्ति कुछ ऐसी स्थिति हुई है कि कभी २ वह लोग भी जो युवावस्था में सामाजिक सुधार के प्रचंड सहायक थे जीवन और अनुभव की ऊंची नीची राह पर पड़कर और कार्य करनेवाले मनुष्यों की हानियां और अपयश उठा कर कुछ तो हताश होने के कारण और कुछ अतियात्रा से ठंडे होकर रह जाते हैं । यही कारण है कि हम बहुतेरे ऐसे मनुष्य पाते हैं जो अच्छे मित्र अच्छे बाप अच्छे पति प्रतिष्ठित प्रजा और सर्कार के सच्चे नौकर होने पर भी दूसरों के हितसे निरुत्साही और निश्चिन्त रहते हैं । यही वह महाशय हैं जिन्होंने युवावस्था में सामाजिक सुधार को अपने जीवन का परम-

अभीष्ट नहीं बनाया था । युवाही अवस्था में राजनैतिक और समाजरूपी बैकुंठी नहर के स्वप्न आया करते हैं और उसी समय में मनुष्यमात्र के साथ प्रेम करना और बड़ी २ आशाओं के टूट जाने से साहस हीन न होना और " उच्च प्रबल आशाओं पर जो हमें मर्द बनाये हुये हैं " पूर्ण विश्वास करना हम सीख जाते हैं । युवावस्था की प्रेरणाओं और उमङ्गों पर मुझे बड़ा विश्वास है अतएव मैं उसको बहुत ही पुष्ट करता हूं कि ऐसे लोग जो विलायत भेजे जायँ उनके हृदयों पर इस बात की महानता भरपूर चिह्नित होना चाहिये कि वह अपने उमङ्ग सामाजिक सुधार में उत्तम रीति से निकाला करें ।

यह कि नव-युवकों के हृदयों में सामाजिक जवाब-दही का भाव भरपूर उत्पन्न हो जाय प्रयोग सम्बन्ध से भी अति महानता रखता है इस लिये कि सबसे प्रथम बात जिसे भारतवर्ष लौट आने पर उन्हें (अर्थात् कम से कम हिन्दू धर्मवालो को) सिद्ध करना पड़ता है वह यह है कि फिर अपनी जाति में किस प्रकार मिल जायँ । उस मनुष्य के लिये इस बात का सिद्ध कर देना बहुत सहज है जो खुल्लम खुल्ला जाति पांति के बंधन तोड़कर छोटे से यूथ के स्थान में विस्तृत संसार का एक स्तम्भ बन जाने पर प्रस्तुत हो परन्तु यह एक अत्यन्त ही संदेहमय बात है कि और भावों से

उसकी उन्नति हो सकती थी या नहीं । यदि वह बाल-बच्चा वाला मनुष्य है और मेल मिलाप प्रिय है तो जातीय त्याग उसके लिये वहुत सी प्रयोगी कठिनाइयों का कारण होता है परन्तु ऐसे मनुष्य के सम्बन्ध में हमें अधिक वादाविवाद करने की आवश्यकता नहीं है इस लिये कि अभी बहुत दिनों तक इस देश में ऐसे उदाहरणों को रुचि की दृष्टि से नहीं देखा जायगा । उनके अतिरिक्त ऐसे भी मनुष्य हैं जो अपने समाज में जिसमें जाति का भरपूर जकड़बंद है प्रारम्भ से सम्मिलित होना चाहते हैं परन्तु शर्त यह है कि उन्हें जातीय नियमों का प्रतिपालन न करना पड़े बरन उसके प्रतिकूल खुले बंधन जो चाहें करते फिरें । इसी स्थान पर प्रायश्चित्त का सिद्धान्त भी आजाता है जिसके विषय में मैं कुछ लिखना चाहता हूं परन्तु इस विषय के पूर्व ही अति बढ़जाने के कारण अतिसूक्ष्म वर्णन करता हूं ।

सर्व-साधारण इस बात से नाहीं नहीं कर सकते कि हिन्दू-समाज अब तक जाति त्याग कर देने पर प्रस्तुत नहीं है और इंग्लिस्तान से आया हुआ मनुष्य इस पर सन्नद्ध है तो फिर उसे हिन्दू समाज छोड़ देने पर प्रस्तुत रहना चाहिये । यह कहना वृथा है कि समाज जातीय त्याग के साथ उसका प्रचार भी चाहता है और इस प्रश्न का कि यद्यपि सहस्रों मनुष्य ऐसे हैं जो चोरी छिपे प्रति जान व अनजान के साथ खाते पीते रहते

हैं और उनका कोई मनुष्य कुछ नहीं बिगाड़ता तो फिर खुल्लम खुल्ला ऐसा करने वालों पर क्यों दण्ड दिया जाता है साधारणत: यह उत्तर है कि समाज जातीय नियमों का खुल्लम खुल्ला त्याग नहीं देख सकती। यदि कोई यह विचार करे कि समाज इस बात के लिये प्रस्तुत है तो फिर वह समाज से पूछने के पश्चात् उसके नियम विरुद्ध कार्य-वाही करने लगे थोड़े ही समय के पश्चात् उसे ज्ञात होगा कि वह जाति से बाहर समझा जाता है सैकड़ों वर्षों में जो हमारे समाज में परिवर्तन हुये हैं उनका फल केवल इतना हुआ है कि जातीय बंधन को बहुत ही कम तोड़ सके हैं इंग्लिस्तान से लौटकर आये हुये मनुष्य से वह इस समय यह कहती है कि "तुम्हारा जाति पर विश्वास हो अथवा न हो मुझे तो केवल तुम्हारे निजी रीतियों से सम्बन्ध है यदि यह जातीय नियमानुसार हों तो फिर मुझे उसकी परवा नहीं हो सकती कि तुम घर में चुरा छिपा कर क्या करते हो यदि तुम इसपर प्रस्तुत नहीं हो तो जाओ अपना सर खाओ." इस अवसर पर मैं अपने स्वतन्त्रप्रिय मित्रों से पूछता हूं कि इससे बढ़कर और अधिक स्वतन्त्रता आप क्या चाहते हैं इस रीति में न कपट है न छल-छिद्र इसलिये कि कर्म करने की स्वतन्त्रता परम विस्तृत आप को प्राप्त है और ऐसा कौन मूर्ख होगा जो यह कल्पना कर ले कि आप

को जाति के साथ विशेष अनुराग हैं इस अवसर पर यह भी विश्वास कर लेना चाहिये कि जब तक हिन्दू समाज में बहुत कुछ परिवर्तन न होजायँ जिनके लिये सैकड़ों वर्ष आवश्यक हैं और करोड़ों हिन्दू मूर्खता के अंधकार से बाहर न आ जायँ और नवीन प्रकाश हिन्दू स्त्रियों पर अपना प्रभाव न डालने लगे जातिय प्रबन्ध जो अति प्राचीन है बराबर स्थिर रहेगा और किसी उपाय से वह टूट नहीं सकता—हिन्दुओं के पक्षपात का तोड़ना योंही सम्भव है कि वायर युद्ध के समान उसके दृढ़ तर मोर्चों पर आक्रमण करने के स्थान में पीछे से उस पर चढ़ दौड़ें और उन निर्बलताओं को लक्ष्य बनावें जिनकी रोक नवीन शक्तियों के घाओं पर नहीं हो सकती ।

अब यह प्रश्न उठेगा कि उस समय की बाट जोहना चाहिये या नहीं जब हिन्दू जाति की प्रबल संख्या जातीय त्याग पर प्रस्तुत हो जाय या हमें उन्हीं दोषों का सुधार करना चाहिये जिन्हें प्रत्येक मनुष्य छोड़ने पर उद्यत है क्या हमें इस विषय में पोप के उस वैज्ञानिक उपदेश पर चलना चाहिये ? कि “ नवीनता की परीक्षा पर तुम ही सब से पहिले आरूढ़ न हो जाओ और न पुरानी बातों को सब से पीछे त्याग करो ” कदापि नहीं मेरी यह इच्छा नहीं है परन्तु परिवर्तनों को प्रयोग में लाने से पूर्व सर्व-साधा-

रण के विचारों में सन्नद्धता तो उत्पन्न करो और उनकी रीति-भांतियों के बदलने से पूर्व इन की मति तो बदलो। अब यह देखना है कि हिन्दुओं की साधारण सम्मति जातीय विषय में क्या है वह उसके त्याग पर प्रस्तुत भी है या नहीं बरन इस भांति पूछिये कि इस सिद्धान्त पर भिन्न२ जातियों के सम्मुख स्वतन्त्र वादानुवाद होना भी सम्भव है कि नहीं। प्लेग के बुलौओं और सनातन धर्मी समाजों का स्मरण अभी तक नवीन ही बना है। बात यह है कि जातीय सिद्धान्त के सम्बन्ध में भिन्न सम्मतियों को भी हिन्दू जाति सहन नहीं कर सकती तो फिर यह आशा कैसे की जा सकती है कि वह प्रयोगी रूप ग्रहण कर लेगी। इस सिद्धान्त पर सब से प्रथम साधारण सम्मति में शिक्षा-सम्बन्धी बात उत्पन्न कीजिये और यह कार्यवाही यद्यपि सीधी दृष्टि आती है परन्तु कठिनाइयों से वंचित नहीं। ऐसे सुधार जो शीघ्रता से किये जावें अन्त में लज्जा का कारण हुआ करते हैं। जाति पर वादाविवाद करने का परिणाम तबाही और बरबादी के अतिरिक्त और कुछ नहीं होसकता मैं उसको इसलिये तबाही व बरबादी समझता हूं कि स्वतन्त्र प्रेमियों की निर्दयी और अदूरदर्शी कार्यवाहियों के बलपर

परन्तु इन सब को सहन ही करना पड़ता है और कुछ न कुछ घात लगा ही ली जाती है। प्राचीन समय सन्निपाती दशा को त्याग नाश होगा और नवीन काल-चक्र के जन्म में शोक करना भी उचित है। हमारे शीघ्र प्रेमी भेदों को मिस्टर हरबर्ट इस्पेनरके निम्न लिखित शब्दों पर ध्यानावर्तित होना चाहिये।

"इस बात का प्रकाश बड़ी प्रबलता से किया जा सकता है कि नियम, कर्म, और विश्वासों में सुधार की इसलिये आवश्यकता है कि समाज उस नाशवान् दशा से निकल जाय जो क्रमानुसार उन्नतियां और आविष्कार करती है वर्तमान प्रबन्धों में जो बहुतेरे दोष पाये जाते हैं वह इस प्रकार के हैं जिनका उत्पन्न होना ऐसी दशा में आवश्यक है जब परिवर्तनीय अवसरों क साथ उनके जोड़ बैठाने की चेष्टा की जाती है। ऐसे विचार और नियम जो बीती हुई सामाजिक दशा के लिय तो उचित थे परन्तु नवीन सामाजिक दशा के लिय जिनके वह स्वयं विघ्नकारक हुये हों हास्य और बेजोड़ ज्ञान पड़ते हैं वह नवीन समाज में भी स्थिर रहते हैं और नेत्रों से लोप तबही हुआ करते हैं जब नवीन दशायें नवीन विचार और रहन-सहन की रीतियों

कारण लोगों के विचार व कर्मों में विरोध उत्पन्न होजाता है। समाजिक जीवन के स्थिर रहने के लिये प्राचीनता का उस समय तक विद्यमान रहना आवश्यक है जब तक कि नवीनता उनका स्थान ग्रहण न करले इसलिये सदा का सुधार साधारण उन्नति के लिये आवश्यक है। यथा "सामुद्रिक जन्तुओं के लिये पूर्व इसके कि उनके फेफड़े भलीभांति बढ़े न होलें उनकी राहों को काट देना हानिकारक है इसी प्रकार समाज के लिये यह बात हानिकारक है कि उसके प्राचीन नियम पूर्व इसके कि नवीन उनका स्थान पूर्ण करने के लिये संगठित होजायँ तोड़ दिये जायँ"।

कुछ महाशय इस बखान का यह अर्थ करेंगे कि वर्तमान रूप के स्थिर रखने का समर्थन किया जाता है। उनका यह विचार है कि वह और उनके कुछ मित्र किसी २ सुधार के लिये प्रस्तुत हैं। कोई २ पुरुष तो यह कह उठते हैं कि यदि हिन्दू जाति उन सुधारों के मानने पर प्रस्तुत नहीं है तो वह अपनी डेढ़ईंट की मस्जिद के समान अपना समाज अलग बनालेंगे। कारलायल ने कहीं लिखा है कि "दो तीन मनुष्य एक कमरा में एकत्रित हुये और कहने लगे कि जाओ हम अपना धर्म स्वयं बनाये लेते हैं" इसी तरह यह महाशय भी एक निर्वाचित समाज बनाना चाहते हैं जिसमें न जाति हो न हिन्दू नियम और न प्राचीन कथायें। उनके

कच्चे विचारों में मध्यमता, कादरों का लक्षण और सुधा लुटेरों का अस्त्र कपट हुआ करता है परन्तु उन्हें अपनी भूल जल्द ज्ञात होजायगी हमारा समाजिक प्राचीनत्व प्रेम इतना दृढ़ है कि थोड़े समय में उसका अध:पतन होना सम्भव नहीं हो सकता । नवीन रहन-सहन धीरे २ उसकी जड़ काट रहा है और यह " इस प्रकार का आकर्षण है कि चाहे कार्य में प्रवृत्त हो परन्तु स्थिर दीख पड़ता है और इतना मुहांमुंह भराहुआ है कि उससे न तो शब्द ही निकलता है न फेना यह कोई उत्तम कर्म नहीं हो सकता कि उसकी उन्नति को सहस्त्रों वर्षों के पक्षपात में गर्मी व उमङ्ग उत्पन्न करके रोका जाय । हमारे विश्वास व रीतियों में परिवर्तनीयक्रम उत्पन्न करने के लिये भी सहायक और प्राण निछावर करनेवालों का सा उमङ्ग और साहस आवश्यक है और हिन्दू पक्षपातों को नाश करने में वह पुरुष बड़ी सफालता प्राप्तकर सकते हैं जो हिन्दुओं के समाज में सम्मिलित रहें और न वह जो उसे छोड भागें

॥ इति ॥